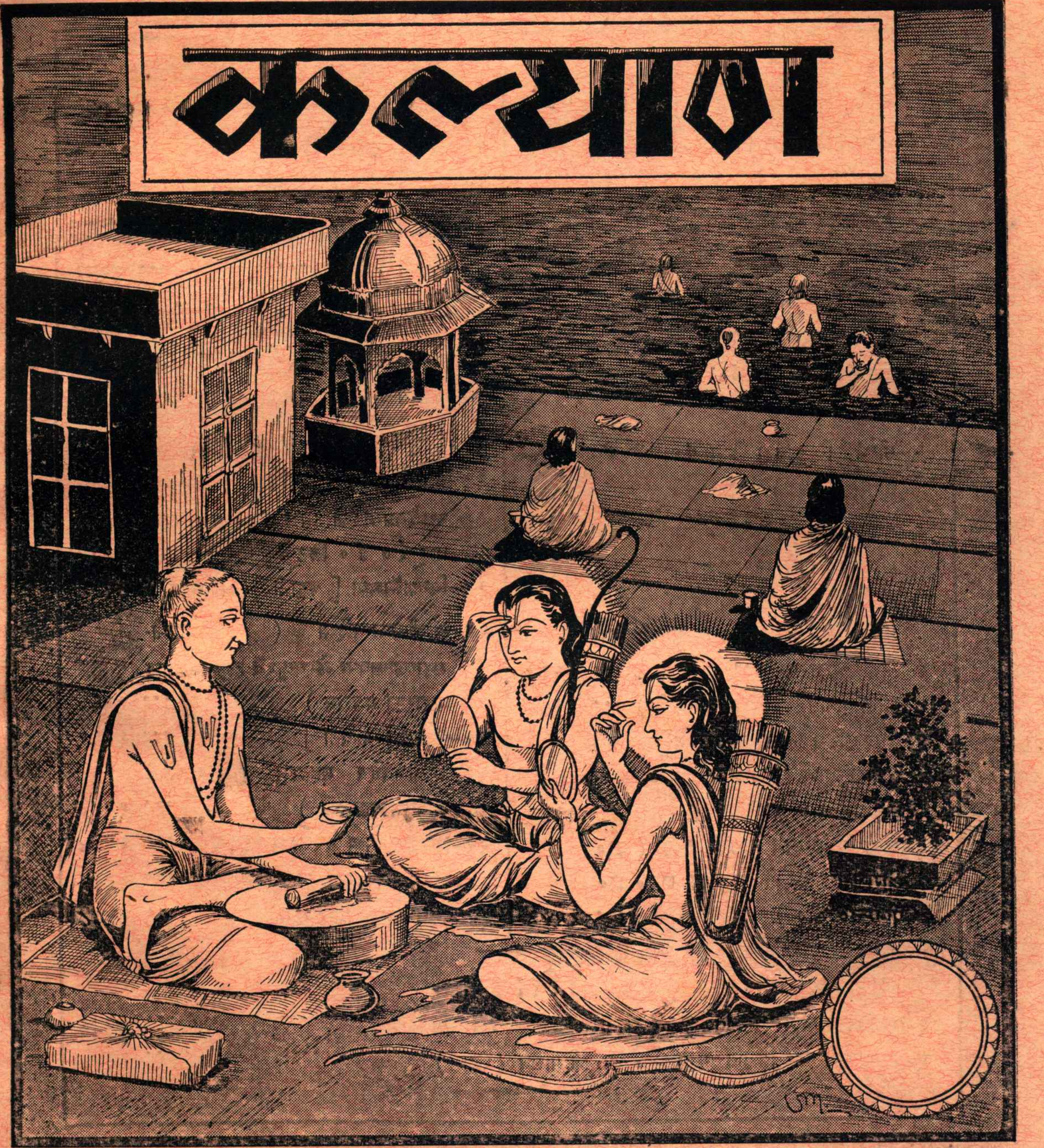

वर्ष ३३] * * * [अङ्क १०

रघुपति राघव राजा राम । पतित-पावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक २०१६, अक्टूबर १९५९

विषय — पृष्ठ-संख्या

१–भगवान्‌की चार विभूति—भृगु, ॐ, जप, हिमालय [कविता] (गीता १० । २५ के आधारपर) ... १२१७
२–कल्याण ('शिव') ... १२१८
३–ज्ञानीके जीवनकी नीति (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) ... १२१९
४–ब्रह्म-संस्पर्शेच्छा (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ... १२२१
५–सीखो [कविता] (पं० श्रीकृष्णमुरारीजी दुबे) ... १२२४
६–समताका स्वरूप और महिमा (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... १२२५
७–स्वर्गसुखभोग अनित्य है (अनन्तश्रीविभूषित श्रीशंकरस्वामीजी श्रीशंकरतीर्थजी महाराज) ... १२३३
८–शक्ति-निपात (श्रीवसिष्ठजी) ... १२४१
९–बहुत कठिन है—बहुत सरल है [कविता] (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा बी० ए०, एल्-एल् बी०) ... १२४२
१०–जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं (डा० श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी एम्० ए० पी-एच्० डी०) ... १२४३
११–चाह [कविता] ... १२४५
१२–संजयकी दृष्टि (श्रीराधाकृष्ण) ... १२४६
१३–मुझे ऐसा मित्र चाहिये (श्रीसुदर्शनसिंहजी) ... १२५१
१४–मानव सुखी कैसे हो ? (श्रीदुर्गेश) १२५२
१५–मेरा 'अहं' बोलता है (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) १२५३
१६–श्रीशैव संतोंकी कथाएँ या बृहद्पुराण (श्रीसु० कण्णनजी) ... १२५६
१७–बाँसुरी सुनाइ दे [कविता] (डा० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम्० ए०, एल्-एल् बी० डी० लिट्) ... १२५७
१८–मिथ्याभिमान [कहानी] (श्री 'चक्र') १२५८
१९–श्रीश्रीराधा-महिमा (श्रीराधाष्टमी-महामहोत्सवपर गोरखपुरमें हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन) ... १२६०
२०–निश्चय [कविता] ... १२६९
२१–श्रीश्रीजयदेव महाप्रभु (गोस्वामीजी श्रीयमुनावल्लभजी) ... १२७०
२२–भगवान् नित्य मेरे साथ रहते हैं ... १२७४
२३–श्रीभगवन्नाम-जप १२७५
२४–पढ़ो, समझो और करो ... १२७८

चित्र-सूची

१–तुलसिदास चंदन घसै तिलक करै रघुबीर — रेखाचित्र ... ... मुखपृष्ठ
२–भगवान्‌की चार विभूति–भृगु, ॐ, जप, हिमालय (रंगीन) १२१७

वार्षिक मूल्य भारतमें ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ।≡) विदेशमें ॥–) (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

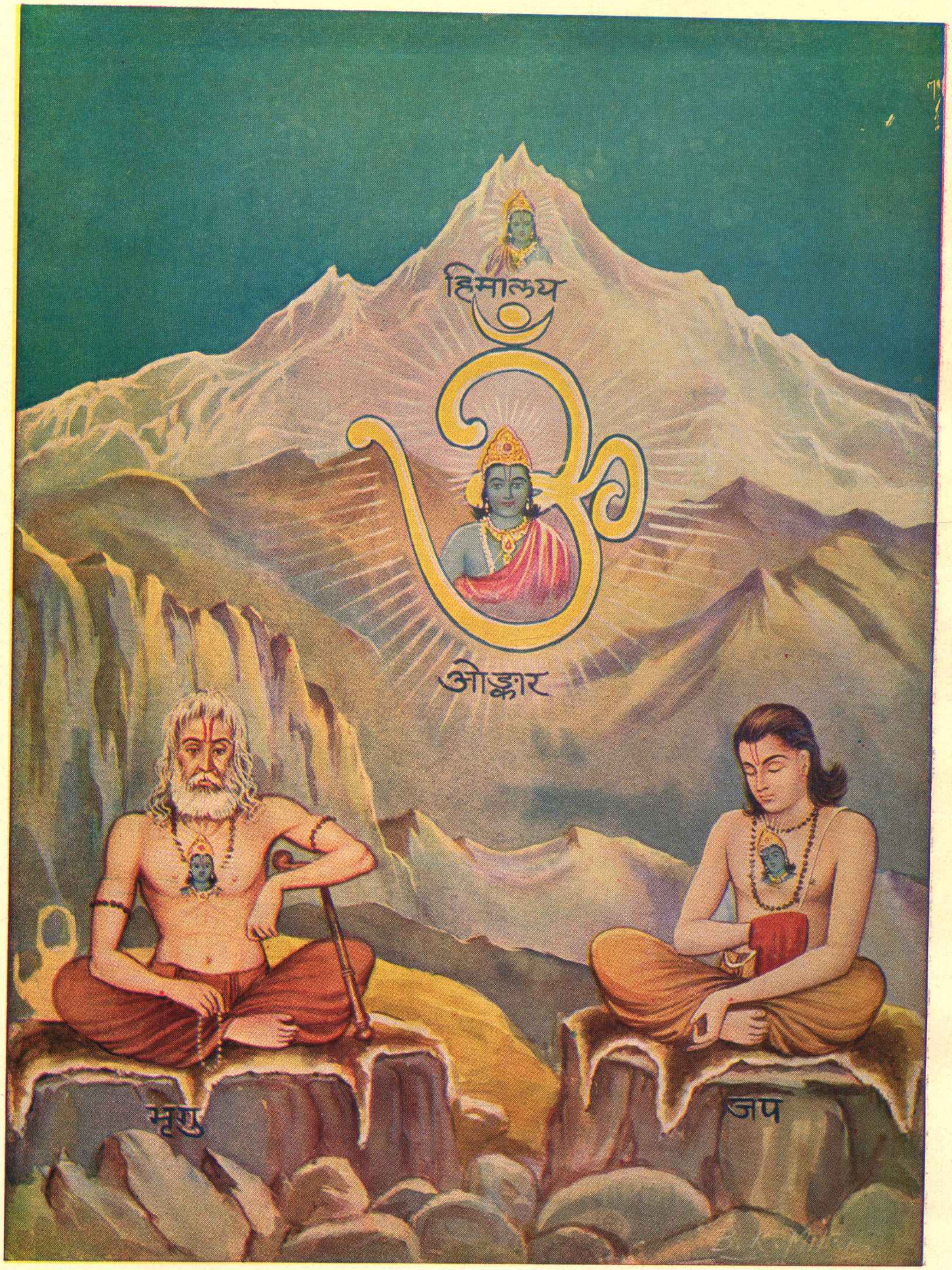

भगवान्की चार विभूति–भृगु, ॐ, जप, हिमालय

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

लोभो लुण्टति चित्तवित्तमनिशं कामः पदाऽऽक्राम्यति क्रोधोऽप्युद्धतधूमकेतुधवलो दन्दग्धि दिग्धोऽधिकम् ।
त्वामाश्रित्य नराः शरण्य शरणं सम्प्रार्थयामो वयं मग्नां मानवतां समुद्धर महामोहाम्बुधौ माधव ॥

वर्ष ३३ } गोरखपुर, सौर कार्तिक २०१६, अक्टूबर १९५९ { संख्या १० पूर्ण संख्या ३९५

भगवान्‌की चार विभूति—भृगु, ॐ, जप, हिमालय

हूँ महर्षियोंमें भृगु मैं ही
वाणीमें हूँ मैं ओंकार ।
यज्ञोंमें जप-यज्ञ, स्थावरों-
में हूँ मैं हिमवान सुठार ॥

(गीता १० । २५)

याद रक्खो—भगवत्कृपा अनन्त और अपार है। वह सभी प्राणियोंपर सभी परिस्थितियोंमें, सभी समय बरसती रहती है। जो उसपर विश्वास करता है, वह उस सर्वथा समभावसे सबको प्राप्त होनेवाली कृपाका अनुभव कर सकता है। जिसका मन अविश्वासके तथा संदेहके अन्धकारसे ढका है, उसे उस परम रहस्यमयी अहैतुकी कृपाके दर्शन नहीं होते।

याद रक्खो—उस कृपाके असंख्य रूप हैं और वह आवश्यकतानुसार विभिन्न रूपोंमें प्रकट होती रहती है। भगवान्के अनुग्रहपूर्ण मङ्गलमय विधानमें मनुष्य जब संदेह करता है, उसके विरुद्ध निश्चय तथा आचरण करता है, तब भगवत्कृपा भयानक रूपमें प्रकट होकर विपत्ति और वेदनाके द्वारा उसके हृदयकी विशुद्धि करती है और जब मनुष्य विश्वासपूर्ण हृदयसे प्रत्येक परिस्थितिमें उसके अनुकूल आचरण करता है, तब वह कृपा बड़े सौम्यरूपमें आत्मप्रकाश करती है।

याद रक्खो—भगवत्कृपा किसी भी रूपमें प्रकट हो, वह सदा मङ्गलमयी है और मङ्गल ही करती है। दवा मीठी भी दी जाती है, कड़वी भी; कहीं-कहीं अङ्ग काटकर भी चिकित्सक अंदरके मवादको निकालता है। पर इन सबमें उद्देश्य एक ही होता है—रोग-नाश। रोगके अनुसार ही दवाका प्रयोग या ऑपरेशनकी क्रिया की जाती है। इसी प्रकार भगवत्कृपाके भी विविध रूप होते हैं—हमारे परम मङ्गलके लिये ही।

याद रक्खो—बाहरी वस्तुओं तथा परिस्थितियोंसे कृपाका पता नहीं लगता। अनुकूल वस्तु या परिस्थितिमें कृपा समझना और प्रतिकूलमें कृपाका अभाव मानना सर्वथा भ्रम है। कृपामय भगवान्का प्रत्येक विधान कल्याणमय है, 'वे जो कुछ भी करते हैं, सर्वथा निर्भ्रान्त रूपसे हमारे परम कल्याणके लिये ही करते हैं।' जैसे सुख-सौभाग्यमें अत्यन्त अनुकूल दिखायी देनेवाले पदार्थ और परिस्थितिकी प्राप्तिमें उनकी कृपा रहती है, ठीक वैसी ही दुःख, दुर्भाग्य, अत्यन्त प्रतिकूल दीखनेवाले पदार्थ और परिस्थितिकी प्राप्तिमें रहती है।

याद रक्खो—जब तुम विश्वासकी दृष्टि प्राप्त कर लोगे, तब तुम्हें यह प्रत्यक्ष दिखलायी देगा कि तुम्हें प्राप्त होनेवाले प्रत्येक पदार्थ और परिस्थितिमें भगवत्कृपाका मङ्गलमय कार्य हो रहा है। फिर तुम्हें चोटका दुःख जरा भी न होगा; वरं चोट करनेवाले परम प्रेमास्पद परम कल्याणमय नित्य सहज-सुहृद प्रभुके मङ्गलमय कोमल आनन्दमय कर-स्पर्शका आनन्द प्राप्त होगा।

याद रक्खो—भगवान् सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वथा निर्भ्रान्त, सर्वलोकमहेश्वर हैं; वे सब कुछ जानते, सब कुछ कर सकते हैं एवं सबके स्वामी हैं। उनसे कभी भूल नहीं होती। ऐसे भगवान् सतत सावधानीके साथ सहजरूपमें तुमपर कृपा-वर्षा करते रहते हैं। तुम विश्वास करो, अपनेको उनके चरणोंपर बिना किसी शर्तके डाल दो, उनके प्रत्येक विधानकी मङ्गलमयतामें विश्वास करके उसका हृदयसे स्वागत करो; अपनेको सम्पूर्ण समर्पण कर दो। उनके कृपामय विधानको बदलाना मत चाहो। फिर देखोगे—उनकी कृपा सीधी तुम्हारे जीवनपर बरसेगी तथा तुम्हारे वर्तमान और भविष्यको परम उज्ज्वल तथा परम आनन्दमय बना देगी।

याद रक्खो—तुम जो कुछ प्राप्त करना चाहते हो, जब वह नहीं होता और जब उसमें अचानक ऐसी बाधा आ जाती है जो तुम्हारे मनोरथको नष्ट कर देती है, तब वहाँ तुम भगवान्की कृपाके दर्शन करो। भगवत्कृपा ही बाधा बनकर आयी है और तुम्हें भारी दुःखसे बचानेके लिये, जिसकी तुम्हें कल्पना नहीं है और वह भलीभाँति जानती है; तुम्हारे इस कार्यको असफल कर देती है।

याद रक्खो—तुम भगवत्कृपासे अपने मनका काम करवाना चाहते हो, यही तुम्हारी बड़ी भूल है। यही तुम सीधी तुमपर उतरनेवाली कृपाकी धारामें बाधा देते हो। भगवत्कृपासे कह दो—मुक्तकण्ठसे विश्वासकी मौन वाणीमें स्पष्ट कह दो कि 'तुम जो ठीक समझो, जब ठीक समझो, जैसे ठीक समझो, वही, उस समय, वैसे ही करो।' अपनेको बिना किसी शर्तके, बिना कुछ बचाये—भगवत्कृपाके समर्पण कर दो। फिर भगवत्कृपा निर्बाधरूपसे अपना मङ्गलमय दर्शन देकर तुम्हें कृतार्थ कर देगी।

'शिव'

ज्ञानीके जीवनकी नीति

(लेखक—स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

स्वस्मिन् सम्यक् परिज्ञाते किं ज्ञेयमवशिष्यते ।
किं हेयं किमुपादेयं किं कार्यं चात्मदर्शिनः ॥

अपने स्वरूपका सम्यक् ज्ञान होनेके बाद ज्ञानीको जाननेके लिये क्या बाकी रह जाता है ? ऐसे ज्ञानीमें हेय या उपादेय बुद्धि कहाँसे होगी ? और आत्मज्ञानीके लिये क्या कर्तव्य शेष रहेगा ? तात्पर्य यह है कि आत्मज्ञान होनेके बाद ज्ञानीके लिये कोई कर्तव्य नहीं रह जाता ।

यहाँ जो कहा गया है कि 'आत्मज्ञान होनेके बाद ज्ञानीको कोई कर्तव्य नहीं रह जाता'—यह बात सोलहो आने सत्य है; क्योंकि कर्तव्य-बुद्धिका त्याग किये बिना मुक्ति होती ही नहीं । कारण यह है कि जीवनके अन्तिम क्षणतक कर्तव्य-पालन हो ही नहीं सकता ।

तथापि इसका अर्थ यह नहीं करना चाहिये कि ज्ञानका निश्चय होनेके बाद ज्ञानी मनमाना कर्म कर सकता है, मनमाना आहार कर सकता है और इच्छानुसार संग कर सकता है । ऐसा करनेसे तो **'आरूढयोगोऽपि निपात्यतेऽधः ।'** योगमें आरूढ हुए पुरुषका भी पतन होता है । और इसीलिये—

'निःसङ्गता मुक्तिपदं यतीनाम् ।'

—ऐसा कहा जाता है ।

ज्ञानीका जीवन स्वभावतः ही त्यागप्रधान होता है; क्योंकि उसकी तो भोगोंके प्रति सहज अरुचि होती है । ऐसा हुए बिना ज्ञानका उदय ही नहीं होता । श्रीअष्टावक्र मुनि कहते हैं—

न जातु विषयाः केचित् स्वारामं हर्षयन्त्यमी ।
शल्लकीपल्लवप्रीतमिवेभं निम्बपल्लवाः ॥

इस संसारका कोई भी विषय ज्ञानीको सुखकर नहीं दीखता और इस कारण उसकी प्राप्ति-अप्राप्तिसे उसे हर्ष-विषाद नहीं होता । मीठे गन्नेको खाकर तृप्त हुआ हाथी जैसे कड़वे नीमकी पत्तियोंकी ओर भी नहीं देखता, उसी प्रकार ज्ञानी विषयोंके सामने कभी भी नहीं ताकता । अन्यत्र भी कहा है—

लब्धत्रैलोक्यराज्यो ना भिक्षामाकाङ्क्षते यथा ।
तथा लब्धपरानन्दः क्षुद्रानन्दं न काङ्क्षति ॥

भाव यह है कि त्रिलोकीका राज्य मिलनेके बाद जैसे पुरुष भिक्षा माँगनेकी इच्छा नहीं करता, उसी प्रकार निरतिशय आत्मानन्दका अनुभव करनेवाला क्षणिक आनन्दकी इच्छा नहीं करता ।

परमानन्दका अनुभव होनेके बाद लवानन्द अपने-आप छूट जाता है । एक संतने कहा है—

तिन खान-पान नहिं भावे है । नहिं कोमल बसन सुहावे है ॥
तिन विषयभोग सब खारा है । हरि आशिकका मग न्यारा है ॥

इसी भावको श्रीविद्यारण्य मुनिने इस प्रकार व्यक्त किया है—

प्रारब्धकर्मप्राबल्याद् भोगेष्विच्छा भवेद्यदि ।
क्लिश्यन्नेव तदाप्येष भुङ्क्ते विष्टिगृहीतवत् ॥
(तृप्तिदीप १४१)

प्रारब्ध-कर्मकी प्रबलतासे ज्ञानीको यदि भोगविषयक इच्छा हो तो भी वह बेगारीमें पकड़े गये पुरुषके समान मनमें क्लेशका अनुभव करते हुए ही भोगोंको भोगता है । बेगारीमें पकड़े गये पुरुषको जैसे उस काममें कोई रस नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानीके जीवन धारण करनेमें भी कोई रस नहीं रहता; क्योंकि उसका उसे कोई प्रयोजन ही नहीं है ।

इसलिये ज्ञानीको ऐसी सुन्दर दिनचर्या बनानी चाहिये कि जिससे अन्तःकरणमें सत्त्वगुणका प्रकाश बना रहे और ज्ञान-निष्ठा भी शिथिल न हो। उसमें गीता अ० १७। १४—१६ के अनुसार कायिक, वाचिक तथा मानसिक तप सहज भावसे हुआ करे और गीता अ० १८। २३ तथा ४२ के अनुसार ऐसे कर्म भी होते रहें, जिनसे सत्त्वगुणकी रक्षा हो। 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'—इसके लिये गीता अ० १७। ८ के अनुसार सात्त्विक ओहारकी व्यवस्था रक्खी जा सकती है तथा अ० १७। ९-१० के अनुसार राजसी और तामसी आहारका त्याग आवश्यक हो जाता है।

ज्ञानीका अन्तःकरण सत्त्व कहलाता है, यह बात हमलोग जानते हैं। तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि ऐसे अन्तःकरणमें तीनों गुणोंकी उपस्थिति ही न हो। राजसी-तामसी कर्म होते रहेंगे, राजसी-तामसी आहार किया जायगा और राजसी-तामसी सङ्ग भी यथेच्छ होता रहेगा तो रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धि हुए बिना रहेगी ही नहीं और वह यदि विशेष जोर पकड़ लेगी तो सत्त्वगुणको दबा भी सकती है। फलतः गीता अ० १८। ३१-३२ के अनुसार धर्माधर्म और कार्याकार्य-विवेकबुद्धिके क्षीण होनेपर अधर्म ही धर्म दीखने लगेगा और पाप ही पुण्यरूप दिखायी देगा। इससे बढ़कर पतन और क्या हो सकता है ?

यही बात वासनाओंकी है। वे पूर्णतया नष्ट नहीं होती हैं। परंतु 'तनु' अर्थात् क्षीण हो जाती हैं। भोगप्रधान विलासी जीवनके द्वारा भोगवासनाओंको उत्तेजन मिलता रहे, तो भी वे प्रबल नहीं होंगी, ऐसा मानना बुद्धिमानी नहीं है और न इसमें कल्याण हो है।

ज्ञानीको तो गीता अ० १३। १७-१८ के अनुसार आत्मतृप्तिमें ही रहना चाहिये तथा कर्म करने या न करनेमें उदासीन रहना चाहिये। ऐसे ज्ञानीको जीवन-निर्वाहमात्रके लिये भी किये जानेवाले कर्मोंमें भी असुविधा ही प्रतीत होगी। परंतु जहाँ कर्म किये बिना छुटकारा ही नहीं, वहाँ वह कर्म करेगा, पर उनमें आसक्त नहीं होगा।

'चंचरीक जिमि चंपक बागा।'

चम्पाके वनमें जैसे भ्रमर किसी फूलपर बैठकर उसका रस नहीं लेता, केवल मँडराता रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी संसारमें रहता है।

इस प्रकारकी जिसके जीवनकी नीति हो ऐसा जीवन्मुक्त पुरुष (आत्मज्ञानी) शरीरपातके अनन्तर कैवल्यको ही पाता है। अन्यथा क्या होगा सो भगवान् जानें।

श्रीवसिष्ठ ऋषि कहते हैं—

सम्प्राप्य कस्त्यजति नाम तदात्मतत्त्वं
प्राप्यानुभूय च जहाति रसायनं कः।
शाम्यन्ति येन सकलानि निरन्तराणि
दुःखानि जन्ममृतिमोहमयानि राम॥

(नि० उ० ८५। २८)

जिस आत्मज्ञानके द्वारा जन्म-मृत्यु तथा मोहरूप सारे दुःख सदाके लिये सर्वथा नष्ट हो जाते हैं, ऐसा आत्मज्ञान प्राप्त करनेके बाद कौन उसका त्याग करेगा ? (और विषयभोगमें रमेगा ?) रसायन हाथ लग जाय और उसके सेवनसे लाभ भी दिखायी दे, फिर उसे कौन छोड़ेगा (और कौन कुपथ्यमें पैर रक्खेगा) ?

देहं लब्ध्वा विवेकाढ्यं द्विजत्वं च विशेषतः।
तत्रापि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम्॥
को विद्वानात्मसात् कृत्वा देहं भोगानुगो भवेत्॥

(अ० रा०)

सदसद्विवेकसे ही जिसकी महत्ता है, ऐसा (मानव-) शरीर ईश्वरकी कृपासे हो प्राप्त होता है। उसमें भी

द्विजत्वकी प्राप्ति और दुर्लभ है, उसमें फिर कर्मभूमि भारतवर्षमें मानव-शरीर पाना तो अत्यन्त ही दुर्लभ है। ऐसा देवदुर्लभ देह मिलनेपर भी ऐसा कौन मूढ़ होगा, जो देहको ही आत्मा—अपना स्वरूप मानकर विषयभोगमें जीवन बितायेगा ? कोई भी समझदार मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता।

[समस्त भूमण्डलमें केवल भारतवर्ष ही कर्मभूमि है। जगत्का शेष भाग तो भोगभूमि है, क्योंकि वहाँ-के मनुष्य परलोक, पुनर्जन्म या मोक्षको समझते नहीं।]

ब्रह्म-संस्पर्शेच्छा

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा*)

निर्विशेष चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मके संस्पर्शकी कामना अद्भुत है। वे समस्त देहधारियोंकी अन्तरात्मा हैं[1]। वे अशेष प्राणियोंके परम सखा, उनकी अपनी ही परम प्रिय अन्तरात्मा और नित्य सहचर हैं[2]। लोकायतवादी, चार्वाकमत-वादी नास्तिक देहात्मवादी हैं। वे देहको ही आत्मा मानते हैं। समस्त देहधारियोंकी आत्मा होनेके कारण वे उन नास्तिकोंकी आत्माकी भी आत्मा हैं। अतः उनकी ओर समस्त प्राणियोंकी प्रवृत्ति स्वाभाविक है। उनकी ओर अप्रवृत्ति—उनकी उपेक्षा—विस्मृति ही सर्वोपरि विपत्ति है—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

'विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः।'

उन अखिलात्मा, सुखसुधासिन्धु, आनन्दराशिके सांनिध्य, सर्वात्मना स्मरण-दर्शन-संस्पर्शके बिना सुख-शान्ति कहाँ ? इसीलिये श्रीरामचन्द्रजीके वन चलनेपर अयोध्या-वासी अपना देवदुर्लभ घर, स्त्री, पुत्र, सुख—सब छोड़-कर उनके पीछे दौड़ चले—

सहि न सके रघुबर बिरहागी।
चले लोग सब ब्याकुल भागी॥
सबहिं बिचार कीन्ह मन माहीं।
राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू।
बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥
चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई।
सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
लागत अवध भयावनि भारी।
मानहुँ कालराति अँधिआरी॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी।
डरपहिं एकहि एक - निहारी॥
घर मसान परिजन जनु भूता।
सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं।
सरित सरोबर देखि न जाहीं॥

(रामचरित० अयोध्या० दो० ८२)

सुमन्त श्रीरामको जब गङ्गा पारकर वापस आते हैं, तब श्रीरामके वियोगमें अपनी आँखों देखा राज्यवृत्त राजा-के सामने निवेदन करते हुए कहते हैं कि महाराज ! आपके राज्यमें भारी विपत्ति पड़ गयी है। श्रीरामभद्रके वियोगसे सब वृक्ष पुष्प, कलियों तथा अङ्कुरके सहित

* पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराजके एक प्रवचनके आधारपर।

१. अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्। (श्रीमद्भा० १०। ३१। ४)

२. (क) स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनाम्। (श्रीमद्भा० ७। ८। ३८)

(ख) तैं निज बिपति जाल जहँ घेरो।
श्रीहरि संग तज्यौ नहिं तेरो। (विनय-पत्रिका)

सूख गये हैं। नदियोंका जल तापसे खौल रहा है। झील, सरोवर सभीकी यही दशा हो रही है। वन-उपवन-उद्यानोंके पत्ते सूख रहे हैं—

विषये ते महाराज महाव्यसनकर्शिताः।
अपि वृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पाङ्कुरकोरकाः॥
उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च।
परिशुष्कपलाशानि वनान्युपवनानि च॥

(वाल्मीकि० रामायण अयोध्या० ५९। ४-५)

कहते हैं कि रामके वनवासके समय किसी दरिद्रको विपुल धनराशि मिली; किसी वन्ध्याको पुत्रोत्पत्तिका स्वर्णावसर मिला, पर रामके वियोगमें उन्हें तनिक भी हर्ष नहीं हुआ। किसी चिरपतिवियोगिनीका पति विदेशसे वापस आया, पर उसे तनिक भी प्रसन्नता नहीं हुई[1]। श्रीरामके घोड़ोंको सुमन्त्र बड़ी कठिनतासे वापस ले आये थे। भरत रामकी अपेक्षा उनकी परिचर्याका सौगुना ध्यान रखते थे, किंतु वे प्रतिदिन दुबले ही होते जाते थे—

राघौ ! एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरो बनहि सिधावौ॥
भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहु कमल हिम-मारे॥
सुनहु पथिक !जो राम मिलहिं बन, कहियो मातु-सँदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिन तें इन्ह को बड़ो अँदेसो॥

(गीतावली अयोध्या० ८७)

अधिक क्या तीक्ष्ण विषवाले तामसी, क्रूर जीव—बिच्छू, सर्प आदि भी रामके वियोगमें दुखी हो जाते हैं, उन्हें देखकर अपना तीक्ष्ण विष छोड़ देते हैं—

न च सर्पन्ति सत्त्वानि व्याला न प्रसरन्ति च।
रामशोकाभिभूतं तं निष्कूजमभवद् वनम्॥

(वाल्मीकि० २। ५९। ६)

जिनहि निरखि मग साँपिनि बीछी।
तजहिं बिषम बिष तामस तीछी॥

अत्यन्त क्रूरस्वभावके मांस-शोणितप्रिय पिशिताशी खर-त्रिशिरा आदि राक्षस भी रामको देखकर अत्यन्त प्रभावित हो जाते हैं और वे भी कह उठते हैं कि यद्यपि इन्होंने हमारी बहन शूर्पणखाके नाक-कान काट डाले हैं, तथापि ये वधके योग्य नहीं हैं। ये तो अनुपम पुरुष हैं। हमने सभी सुन्दर-से-सुन्दर देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, असुर, मुनियोंको देखा है, कइयोंका वध भी किया है; पर भाई ! आजतक ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं देखी—

जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते।
देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई।
देखी नहिं असि सुंदरताई॥

रावणके सम्बन्धमें भी कहा जाता है, (दक्षिण भारतमें यह कथा बहुत प्रसिद्ध है) कि रामेश्वर-स्थापनके समय वह कर्मकाण्ड करानेके लिये समुद्र-तटपर आया। जब रामेश्वर-की प्रतिष्ठा हो चुकी, तब श्रीरामने उसे दक्षिणा माँगनेके लिये कहा। रावणने कहा—'तुम मुझे दे ही क्या सकते हो ? तुम्हें केवल एक सिर दो भुजाएँ हैं, हमारे बीस बाहु दस सिर। तुम्हारा तो इस समय तुच्छ भूखण्ड अवध-प्रान्तवर्ती देशपर भी अधिकार नहीं है, मेरा स्वर्ग, पाताल, भूतल सबपर अधिकार है। तुम पिता-पितामह, पत्नी-पुत्र आदि सबसे शून्य हो, मेरे अभी भी पिता, पितामह, प्रपितामह तथा असंख्य पत्नी-पुत्रादि वर्तमान हैं। तुम तो सर्वथा विपन्न और मैं सम्पन्न हूँ।' इसपर भगवान् रामने कहा कि ऐसा होनेपर भी यज्ञाङ्गपूर्तिके लिये आपको कुछ लेना आवश्यक है। रावणने कहा कि 'ऐसी ही बात है तो बस यही दे दो कि हमारा तुममें कहीं प्रेम न हो जाय; क्योंकि तुम्हें देखनेपर मेरे मनमें खलबली मच जाती है। भय होता है कि कहीं तुमसे स्नेह न हो जाय। बस ! यही बहुत होगा। और कुछ मत दो।' यही भगवान्‌का सब कुत्सित प्राणि-पदार्थोंमें मोद उत्पन्न करना—कुमुद्वत्ता है।

---

१. नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन् विपुलं वा धनागमम्। पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाप्यनन्दत॥
गृहे गृहे रुदत्यश्च भर्तारं गृहमागतम्॥ (वाल्मीकि० २। ४८। ५-६)

गर्गसंहिता, कृष्णोपनिषद्, आनन्दरामायण आदिमें यह कथा आती है कि सच्चिदानन्दलक्षण, सर्वाङ्ग-सुन्दर, आत्मारामुनिगणाकर्षी, भुवनमोहन भगवान् श्रीरामचन्द्रको देखकर तृण-मूल-फलाशी वनवासी मुनिगण भी अत्यन्त आकृष्ट हुए और कहने लगे कि हम आपका परिष्वङ्ग—आलिङ्गन करना चाहते हैं—

श्रीमहाविष्णुं सच्चिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवुः। तं होचुर्नोऽवद्यमवतारान्वै गणयन्ते आलिङ्गयामो भवन्तमिति। (कृष्णोपनिषद् १ । १)

सर्वत्यागी योगी मुनियोंकी यह इच्छा ! फिर कैसे कहा जाय कि उनमें आकर्षण नहीं है ? अपास्त-समस्तदोष निखिलगुणगणैकराशि विशुद्धबुद्धि भरत तो कहते हैं कि 'माँ ! प्रचण्डज्वालामालाकुलित अग्निका दाह भी मैं सह सकता हूँ और वज्रके तुल्य तलवारकी धार तथा बाणोंकी चोट भी मैं मजेमें बर्दास्त कर सकता हूँ—लीलापूर्वक ही सहन कर सकता हूँ, किंतु श्रीरामके पदद्वन्द्वका वियोग एक क्षण भी मुझसे सहा नहीं जाता—

हा हन्त मातरहह ! ज्वलितानलो मां
कामं दहत्वशनिशैलकृपाणबाणाः।
मश्नन्तु तान् विषहते भरतः सलीलं
श्रीरामचन्द्रपदयोस्तु न विप्रयोगम्॥
(महानाटक० ३ । ३९)

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका भी आकर्षण प्रसिद्ध है। व्रजाङ्गनाओंको जो अनन्त रात्रियाँ श्रीकृष्णके सांनिध्यसे आधे क्षण-जैसी बीतीं; पुनः वे ही कुछ रात्रियाँ उनके वियोगमें कल्पके समान व्यतीत ही नहीं होती थीं—

तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता
मयैव वृन्दावनगोचरेण।
क्षणार्धवत्ताः पुनरङ्ग तासां
हीना मया कल्पसमा बभूवुः॥
(श्रीमद्भा० ११ । १२ । ११)

वनवासिनी किरातिनियोंको कहीं रासेश्वरी नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधारानीका श्रीअङ्गमण्डित केसरको, जो आनन्दकन्द नन्दनन्दन मदनमोहनके पदकमलसे छूटकर श्रीवृन्दारण्यके कोमल दूर्वाओंपर लग गया था, देखकर स्मररोग हो गया। उन्होंने उसे उठाकर अपने मुँहपर, वक्षःस्थलपर लेप कर लिया, इससे उनके स्मररोग-की शान्ति हो गयी। यहाँ स्मरका अर्थ साधारण काम नहीं—अद्भुत श्रीकृष्णप्रेम है। किरातिनियोंके मनमें श्रीकृष्णके मिलनकी तीव्र इच्छा उत्पन्न हो गयी। व्रजकी हिरणियाँ भी उनके वेणुरवको सुनकर हिरणोंके साथ प्रणयावलोकनसे उनकी पूजा करती हैं। गौएँ भी उनके वेणुगीत-पीयूषका उत्तम्भित कर्णपुटोंसे पान करती हैं। बछड़े दूध पीना भूल जाते हैं। नदियोंका वेग भग्न हो जाता है। तरु, लताएँ, गुल्म भी श्रीकृष्णप्रणयके लिये झुक जाते हैं; पुलकित होते हैं। स्थावरोंमें गतिमत्ता तथा चेतनोंमें जडता आ जाती है—

अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्।
(श्रीमद्भा० १० । २१ । १९)

श्रीरूपगोस्वामी इसीलिये विवश होकर कहते हैं कि पुष्करनाभ भगवान्‌के एक-से-एक अवतार हैं और वे सभी परम मङ्गलकर हैं, किंतु लताओंमें प्रेम उत्पन्न कर देना तो श्रीकृष्णका ही कार्य है—

सन्त्ववतारा बहवः पुष्करनाभस्य सर्वतो भद्राः।
कृष्णादन्यः को वा लतास्वपि प्रेमदो भवति॥
(लघुभागवतामृत ५ । २२)

व्रजाङ्गनाएँ कहती हैं कि यहाँका तृण, लता, गुल्म, तरु होना भी बड़ा सौभाग्यकर है, जिन्हें नन्दनन्दनके श्रीअङ्गका संस्पर्श सुलभ है, अधिक क्या हम व्रज-भूमिकी रज होतीं तो भी श्रेष्ठ ही था, जो उड़-उड़कर भगवान्‌के श्रीअङ्गोंपर गिरतीं; किंतु सखियो ! इस व्रजाङ्गना-जन्मसे तो कृष्ण-संस्पर्श क्या कृष्ण-दर्शन भी दुर्लभ हो गया। कवि कर्णपूर गोस्वामीविरचित 'आनन्दवृन्दावनचम्पू'में इसका बड़ा ही विस्तार है। गोपाङ्गनाएँ व्रजके तमाल, तुलसी, मालती, जातिलता,

यूथिका, कोविदार, पनस, बिल्व आदिसे पूछती चलती हैं कि क्या प्रियतमने तुम्हें अपना सुहृद् मानकर आलिङ्गन किया है ? जब उनसे कोई उत्तर नहीं मिलता, तब वे कहती हैं कि प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके आलिङ्गनसे इनकी सब वेदना मिट गयी है, अब इन्हें दूसरेकी वेदनाओंका क्या पता !—

'तदीयालिङ्गनेनापहृतवेदनो वेदनायं निवेदितम् ।'

इसी प्रकार वे पशुओं, पक्षियों तथा मृगोंसे भी पूछती चलती हैं। मानो यह उपदेश करती हों कि प्रियतमको प्राप्त करनेके लिये अहंकारका परित्याग कर सबसे पूछना चाहिये। प्रभुके श्रीअङ्गस्पर्शसे, चरणरजके स्पर्शसे अचर, चर सभी जीव कृतार्थ हो जाते हैं—

परसि चरन चर अचर सुखारी।
भए परम गति के अधिकारी ॥
परसि रामपद पदुम परागा।
मानत भूमि भूरि निज भागा ॥

अतः मायिक, नश्वर, विश्व-प्रपञ्चसे अलग होकर प्रपञ्चातीत, सर्वानर्थनिवर्तक, परमहितकारी, परमानन्दमय, परमतत्त्व प्रभुका सदा चिन्तन करना चाहिये। इससे बढ़कर और सुख कहीं नहीं है। सुखके भी सुख वे ही हैं —

प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम ।

सीखो

(रचयिता—श्रीकृष्णमुरारीजी दुबे)

सुमनोंसे सीखो प्रिय साथी !
सबके सु-मन रिझाना ।
और कंटकोंमें भी रहकर,
मन्द-मन्द मुसकाना ॥ १ ॥

× × ×

कोकिलसे सीखो तुम सबको
मीठे बोल सुनाना ।
झरनोंसे सीखो पथरीले
पथपर बढ़ते जाना ॥ २ ॥

× × ×

सागरसे सीखो गहराई
और हिमगिरिसे दृढ़ता ।
क्षमादान सीखो धरतीसे,
गंगासे पावनता ॥ ३ ॥

× × ×

चींटीसे भी सीखो साथी !
प्रतिपल अति श्रम करना ।
स्नेहपूर्ण दीपकसे सीखो,
घर-घरका तम हरना ॥ ४ ॥

× × ×

लेकर अच्छी सीख दिखाओ,
तुम अपनी मानवता ।
पाप-पुञ्ज-तम दूर करो तुम,
दूर करो दानवता ॥ ५ ॥

समताका स्वरूप और महिमा

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

परमात्माकी प्राप्तिके कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग आदि साधनोंकी सिद्धिमें समता ही मुख्य है। समता ही उच्चतम जीवनकी कसौटी है और समता ही उत्तम-से-उत्तम गुण (भाव) है एवं परमात्माका स्वरूप भी सम है (गीता ५ । १९) ।

राग-द्वेषका सर्वथा अभाव या समता एक ही वस्तु है। अपने शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और सिद्धान्तके अनुकूल क्रिया, पदार्थ, प्राणी, भाव और परिस्थितिकी प्राप्तिमें राग (आसक्ति) होकर उससे काम, लोभ, हर्ष आदि होते हैं एवं अपने शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और सिद्धान्तके प्रतिकूल क्रिया, पदार्थ, प्राणी, भाव और परिस्थितिकी प्राप्तिमें द्वेष होकर उससे वैर, उद्वेग, ईर्ष्या, क्रोध, मोह, चिन्ता, भय आदि होते हैं। इनमें राग-द्वेष ही दुर्गुण-दुराचाररूप सारे अनर्थोंके मूल कारण हैं। राग-द्वेषके नाशसे ही उपर्युक्त सारे विकारोंका नाश होता है। राग-द्वेषका मूल कारण है अहंता-ममता और अहंता-ममताका मूल कारण है अज्ञान। इस अज्ञानके नाशसे सारे दोषोंका नाश हो जाता है। इस अज्ञानका नाश होता है ज्ञानसे और उस ज्ञानकी प्राप्ति होती है कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग आदि साधनोंसे एवं सत्पुरुषोंके सङ्गसे।

कर्मयोगसे ज्ञानकी प्राप्ति भगवान्‌ने गीतामें इस प्रकार बतलायी है—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥
(गीता ४ । ३८)

'इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निस्संदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मामें पा लेता है।'

यहाँ जो यह कहा गया कि कुछ समयतक निष्काम-भावसे कर्म करते-करते कर्मयोगकी सिद्धि होनेपर परमात्मविषयक यथार्थ ज्ञान अपने-आप ही हो जाता है, इससे कर्मयोगके द्वारा ज्ञानकी प्राप्ति बतलायी गयी है।

भगवान्‌ने गीतामें भक्तियोगसे ज्ञानकी प्राप्ति यों बतलायी है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥
(गीता १० । १०-११)

'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

इसी प्रकार भगवान्‌ने गीता अ० १८ श्लोक ५० में ज्ञानकी परानिष्ठाका वर्णन करनेका संकेत करके ५१ वेंसे ५३ वें तक ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिके उपाय बतलाये और फिर ५४वें, ५५ वें श्लोकोंमें उसका फल ज्ञानकी प्राप्ति बतलाया—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥
(गीता १८ । ५४-५५)

'फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित, प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी आकाङ्क्षा ही करता है, ऐसा समस्त प्राणियोंमें समभाववाला योगी मेरी परा भक्ति (तत्त्वज्ञान) को प्राप्त हो जाता है। उस पराभक्ति (तत्त्वज्ञान) के द्वारा वह मुझ परमात्माको मैं जो हूँ और जितना हूँ, ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है तथा उस भक्ति (तत्त्वज्ञान) से मुझको तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।'

यहाँ उपर्युक्त ज्ञाननिष्ठाके साधनोंका फल ज्ञानकी प्राप्ति बतलाया गया है, अतः इससे ज्ञानयोगके साधनके द्वारा यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिका वर्णन किया गया है।

ऐसे ही, सत्पुरुषोंके सङ्गसे ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् कहते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥
(गीता ४। ३४-३५)

'उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ; उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्म-तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे, जिसको जानकर तू फिर इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा अर्जुन ! जिस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखेगा।'

अतः कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग—सभीकी सिद्धिके लिये साधनरूपमें भी समताकी अत्यावश्यकता है। कर्मयोगकी सिद्धिमें राग-द्वेषके अभावरूप समताकी आवश्यकता दिखलाते हुए भगवान् कहते हैं—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥
(गीता २। ६४-६५)

'परंतु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियों-द्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है। अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।'

यह राग-द्वेषका अभावरूप समता साधनकालकी ही समता है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
(गीता २। ४७)

'तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।'

इस साधनसे कर्मयोगके साधककी ब्रह्ममें एकी-भावसे स्थिति हो जाती है, तब उस पुरुषको 'स्थित-प्रज्ञ' कहते हैं। अतः कर्मयोगके साधकको उचित है कि सभी इन्द्रियोंके विषयोंमें जो राग-द्वेष विद्यमान है, उससे रहित होकर शास्त्रविहित कर्मोंका आचरण करे।

इसी प्रकार भक्तियोगमें भी राग-द्वेषसे रहित होनेकी बात कही गयी है—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप॥
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥
(गीता ७। २७-२८)

'भरतवंशी अर्जुन ! संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञताको प्राप्त हो रहे हैं, परंतु निष्कामभावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दृढ-निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं।'

उससे वे परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं (गीता ७। २९-३०)।

ज्ञानयोगकी सिद्धिके लिये भी राग-द्वेषके त्याग-की आवश्यकता बतलायी गयी है—

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
(गीता १८। ५०—५३)

विशुद्ध बुद्धिसे युक्त तथा हल्का और सात्त्विक भोजन करनेवाला, शब्दादि विषयोंका त्याग करके एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला, सात्त्विक धारणाशक्तिके द्वारा अन्तःकरण और इन्द्रियोंका संयम करके मन, वाणी और शरीरको वशमें कर लेनेवाला, राग-द्वेषको सर्वथा नष्ट करके भलीभाँति दृढ़ वैराग्यका आश्रय लेनेवाला तथा अहङ्कार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करके निरन्तर ध्यानयोगके परायण रहनेवाला, ममता-रहित और शान्तियुक्त पुरुष सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित होनेका पात्र होता है।'

पूर्वोक्त प्रकारसे जो कर्मयोगके साधनद्वारा परमात्मा-को प्राप्त हो जाता है, उस सिद्ध कर्मयोगीमें सम्पूर्ण पदार्थों, भावों, क्रियाओं और प्राणियोंमें साधककी समताकी अपेक्षा विलक्षण स्वाभाविक पूर्ण समता आ जाती है। भगवान्ने कहा है—

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥
सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥
(गीता ६। ७—९)

'सर्दी-गरमी और सुख-दुःखादिमें तथा मान और अपमानमें जिसके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ भलीभाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके ज्ञानमें सच्चिदानन्द-घन परमात्मा सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं अर्थात् उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं। जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान है, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है—ऐसे कहा जाता है। सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणोंमें, धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी समान भाव रखनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठ है।'

यहाँ शीत, उष्ण, लोष्ट, अश्म, काञ्चन 'पदार्थ' हैं, सुख-दुःख 'भाव' हैं, मान-अपमान 'परकृत क्रिया' हैं और सुहृद्, मित्र, वैरी आदि 'प्राणी' हैं।

भक्तियोगके द्वारा भगवान्को प्राप्त हुए सिद्ध भक्तमें भी सम्पूर्ण प्राणियों, क्रियाओं, पदार्थों और भावों-में साधककी समताकी अपेक्षा विलक्षण स्वाभाविक पूर्ण समता आ जाती है—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥
(गीता १२। १८-१९)

'जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सर्दी-गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है; एवं जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी

शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही संतुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है, वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है ।'

यहाँ शत्रु-मित्र 'प्राणी' हैं, मान-अपमान तथा निन्दा-स्तुति 'परकृत क्रिया' हैं, शीत-उष्ण 'पदार्थ' हैं और सुख-दुःख 'भाव' हैं ।

इसी प्रकार ज्ञानयोगके द्वारा परमात्माको प्राप्त हुए गुणातीत पुरुषमें भी सम्पूर्ण भावों, पदार्थों, क्रियाओं, परिस्थितियों और प्राणियोंमें साधककी समताकी अपेक्षा विलक्षण स्वाभाविक पूर्ण समता आ जाती है—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥
(गीता १४ । २४-२५)

'जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है तथा जो मान और अपमानमें सम है, मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है एवं सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है ।'

यहाँ भी दुःख-सुख 'भाव' हैं; लोष्ट, अश्म, काञ्चन 'पदार्थ' हैं, प्रिय-अप्रिय—ये प्राणी, पदार्थ, क्रिया, भाव और परिस्थिति सभीके वाचक हैं, निन्दा-स्तुति और मान-अपमान 'परकृत क्रिया' हैं एवं मित्र-वैरी 'प्राणी' हैं ।

ये लक्षण गुणातीत पुरुषमें स्वाभाविक होते हैं और ज्ञानमार्गके साधकके लिये ये साधन हैं ।

इस प्रकार कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग—सभीके द्वारा परमात्माको प्राप्त सिद्ध पुरुषोंमें सम्पूर्ण प्राणी, पदार्थ, क्रिया, भाव और परिस्थितिमें पूर्णतया समता आ जाती है; क्योंकि समताका होना सभी साधनोंसे परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषोंका एक विशेष लक्षण बतलाया गया है ।

उन समदर्शी सिद्ध पुरुषोंकी समस्त प्राणियोंमें किस प्रकारकी समता होती है, इसका भगवान्ने और भी अधिक स्पष्टीकरण कर दिया है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
(गीता ५ । १८)

'वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं ।'

यहाँ उन पुरुषोंकी प्राणी आदिमें होनेवाली समताके विषयमें गहराईसे विचार करना चाहिये । यहाँ भगवान्ने 'समदर्शिनः' कहा है, 'समवर्तिनः' नहीं । अतः उन महापुरुषोंकी सबमें समान भावसे आत्मीयता होती है । जैसे अज्ञानी मनुष्य अपने शरीरमें सर्वत्र अपने आत्माको समभावसे देखता है और उसमें सुख-दुःखको भी समान देखता है, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष सारे प्राणियोंमें आत्माको और सुख-दुःखको समान देखते हैं (गीता ६ । २९, ३२) । भाव यह कि जैसे मनुष्य अपने-आपको कभी किसी प्रकार किंचित् भी दुःख नहीं पहुँचाना चाहता और स्वाभाविक ही अपने सुखके लिये चेष्टा करता रहता है, वैसे ही वह महापुरुष सारे संसारको कभी किसी प्रकार किंचित् भी दुःख नहीं पहुँचाना चाहता है और उसके द्वारा सदा सबके सुखके लिये स्वाभाविक ही चेष्टा होती रहती है ।

सारे प्राणियोंके साथ बर्ताव तो समान भावसे हो भी नहीं सकता । सवारी हाथीकी ही की जा सकती है, गायकी नहीं । दूध गायका पीया जाता है, कुतियाका नहीं । मल-मूत्र आदिकी सफाईका कार्य चाण्डालसे

लिया जाता है, ब्राह्मणसे नहीं। देवकर्म और पितृकर्मका कार्य ब्राह्मणसे ही कराया जा सकता है, चाण्डालसे नहीं। घास गाय और हाथीको ही खिलाया जा सकता है, कुत्तेको नहीं। भाव यह कि जो प्राणी जिस कार्यके योग्य होता है, उससे वही कार्य लिया जाता है। सबके साथ सम व्यवहार सम्भव नहीं है। यथायोग्य ही व्यवहार सबके साथ किया जा सकता है। इसलिये भगवान्‌ने यहाँ समदर्शनकी बात कही है, समवर्तनकी नहीं।

इसी प्रकार अपने देहके अङ्गोंमें भी सब अङ्गोंके साथ यथायोग्य ही व्यवहार होता है। मस्तकके साथ हमलोगोंका ब्राह्मणके-जैसा व्यवहार है। हम सारे अङ्गोंकी अपेक्षा मस्तककी विशेषरूपसे रक्षा करते हैं। कोई हमें मारनेके लिये आता है और हमारे पास कोई हथियार नहीं रहता तो हम मस्तकको बचानेके लिये हाथोंकी आड़ लेते हैं। किसीको विशेष आदर देना होता है तब मस्तक ही झुकाते हैं और साधारण आदर देते हैं तो हाथ जोड़ते हैं। पैर किसीके भी स्पर्श नहीं कराये जा सकते। भूलसे भी किसीके अङ्गका अपने पैरसे स्पर्श हो जाता है तो उससे सिर झुकाकर या हाथ जोड़कर क्षमा-प्रार्थना करते हैं। यद्यपि सिर, हाथ और पैर हमारे ही अङ्ग हैं, किंतु उनसे व्यवहार यथायोग्य करना ही श्रेष्ठ और उचित माना गया है—वार्तालाप, श्रवण और दर्शन आदि उत्तम क्रियाएँ करनेवाली वाणी, श्रोत्र और नेत्र आदि इन्द्रियाँ मस्तकमें ही हैं। इसलिये मस्तकको ब्राह्मणका रूप दिया गया है। इसी प्रकार हाथोंको क्षत्रियका, जंघाओंको वैश्यका और चरणोंको शूद्रका रूप दिया गया है; क्योंकि परमात्माके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, जङ्घाओंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं। भक्त ध्रुवने स्तुति करते हुए कहा है—

त्वन्मुखाद् ब्राह्मणास्त्वत्तो बाहोः क्षत्रमजायत।
वैश्यास्तवोरुजाः शूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्गताः॥
(विष्णुपुराण १। १२। ६३-६४)

यजुर्वेदमें भी बतलाया गया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
(३१। ११)

'उस परमात्माका मुख ब्राह्मण है, भुजाएँ क्षत्रिय हैं तथा उसकी जो जङ्घाएँ हैं, वे वैश्य हैं और चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुआ है।'

अतः जैसे अपने शरीरके अङ्गोंमें भी भेदका व्यवहार होता है, किंतु व्यवहारमें विषमता रहते हुए भी आत्मीयता समान है और उन अङ्गोंके सुख-दुःखमें भी समान भाव है; इसलिये यह समदर्शन है न कि समवर्तन; इसी प्रकार उस सिद्ध महापुरुषका भी सबके साथ यथायोग्य व्यवहार होनेके कारण व्यवहारकी विषमता रहते हुए भी सबमें आत्मीयता समान होती है, इसलिये उनके सुख-दुःखमें भी समान भाव रहता है। यह है समताका लक्षण और यही सच्चा साम्यवाद है।

गीताके साम्यवाद और आजकलके कहे जानेवाले साम्यवादमें बड़ा अन्तर है। आजकलका साम्यवाद ईश्वरविरोधी है और यह गीतोक्त साम्यवाद सर्वत्र ईश्वरका अनुभव कराता है। वह धर्मका नाशक है और यह पद-पदपर धर्मकी पुष्टि करता है। वह हिंसामय है और यह अहिंसाका प्रतिपादक है। वह स्वार्थमूलक है और यह स्वार्थको निकट ही नहीं आने देता। वह खान-पान-स्पर्श आदिमें एकता रखकर भी आन्तरिक भेद-भाव रखता है और यह खान-पान-स्पर्श आदिमें शास्त्रमर्यादानुसार यथायोग्य भेदका व्यवहार रखकर भी आन्तरिक भेद नहीं रखता एवं सबमें परमात्माको समभावसे देखनेकी शिक्षा देता है। उसका लक्ष्य केवल धनोपार्जन है और इसका लक्ष्य परम शान्तिस्वरूप

परमात्माकी प्राप्ति है। उसमें अपने दलका अभिमान है और दूसरोंका अनादर है, किंतु इसमें सर्वथा अभिमान-शून्यता और सारे जगत्‌में परमात्माका अनुभव करके सबका सम्मान करना है। उसमें बाहरी व्यवहारकी प्रधानता है और इसमें अन्तःकरणके भावकी प्रधानता है। उसमें भौतिक सुख मुख्य है और इसमें आध्यात्मिक सुख मुख्य है। उसमें परधन और परमतसे असहिष्णुता है और इसमें सबका समान आदर है। उसमें राग-द्वेष है और इसमें राग-द्वेषका अत्यन्त अभाव है। इस प्रकार आजकलका साम्यवाद मनुष्यकी अवनतिका हेतु है और गीतोक्त साम्यवाद उन्नतिका हेतु है। ऐसा समझकर मनुष्यको गीतोक्त साम्यवादको ही अपनाना चाहिये।

ऊपर बतलायी हुई साधककी समता, सिद्धकी समता और ब्रह्मके स्वरूपकी समता—इन तीनोंमें एक-दूसरेसे बहुत अन्तर है। सिद्धकी समता तो स्वाभाविक होती है, जिसका दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है; किंतु साधककी समतामें कर्तापनका भाव रहता है, इसलिये वह सिद्धकी समताकी अपेक्षा निम्नश्रेणीकी है। जैसे, भगवान्‌ने कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥
(गीता २। ३८)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान करके अर्थात् इनको समान समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।'

यहाँ 'समे कृत्वा'—'समान करके' ऐसा कथन होनेसे समत्वके साधनकालमें कर्तापनका भाव सिद्ध होता है, अतः यहाँ साधनकालकी समताका वर्णन है, सिद्धकी स्वाभाविक समताका नहीं। यह दोनों प्रकारकी समता ही हृदयका उत्तम गुण (सात्त्विक भाव) है। और यह बुद्धिके द्वारा समझमें आती है, अतः यह ज्ञेय है और ज्ञेय होनेसे जड है; क्योंकि ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयमें ज्ञान और ज्ञेय तो जड हैं तथा ज्ञाता चेतन है—इस न्यायसे जो समता बुद्धिकी वृत्तिके द्वारा समझमें आती है, वह ज्ञेय है। अतः बुद्धिकी वृत्तिरूप ज्ञान और उस बुद्धिके द्वारा ज्ञेय समतारूप सात्त्विक उत्तम गुण (भाव) दोनों ही जड हैं। इसलिये गीता अ० ६ श्लोक २९ और अ० १२ श्लोक ४ में भी कथित साधनकालकी समता बुद्धिके द्वारा ज्ञेय होनेसे जड है। तथा ज्ञाता जिस बुद्धिके द्वारा ज्ञान और ज्ञेयको जानता है, वह बुद्धि भी जड है; किंतु बुद्धि-वृत्तिसे रहित जो केवल आत्माका शुद्ध स्वरूप है, वह चेतन और सम है। ज्ञानयोग (अद्वैतवाद) में आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म एक ही तत्त्व है। उस ब्रह्मका स्वरूप भी सम है, किंतु वह समता चेतन है, जड नहीं; क्योंकि वह ज्ञेय—अर्थात् मन-बुद्धिका विषय नहीं है, वह गुणोंसे अतीत है। जो मनुष्य उस सच्चिदानन्दघन शुद्ध ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है, वह ब्रह्म ही बन जाता है; अतः वह उस चिन्मय समताको प्राप्त हो जाता है, किंतु उसके अन्तःकरणकी समता सत्त्व-गुणमयी है। ऐसा होनेपर भी जिसका मन समभावमें स्थित है, उसकी आत्मा ब्रह्मको प्राप्त हो जाती है, इसलिये उसकी स्थिति देहमें नहीं है, ब्रह्ममें है। भगवान्‌ने कहा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥
(गीता ५। १९)

'जिनका मन समभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है; क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं।'

यहाँ जो ब्रह्मको सम बतलाया गया है, यह ब्रह्मकी समता चेतन है; क्योंकि उस निर्विकार अनिर्देश्य

ब्रह्मके स्वरूपकी समता बुद्धिके द्वारा नहीं जानी जा सकती। स्वयं ब्रह्म ही अपने आपको जानता है।

इसलिये यह समता उपर्युक्त साधककी और सिद्ध-की समतासे अत्यन्त विलक्षण है, अतः यह मन-बुद्धिका विषय नहीं है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि राग-द्वेषका नाश होनेसे ही समता आती है; अतः राग-द्वेषका अभाव या समता एक ही वस्तु है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और सिद्धान्त आदिमें पदार्थों, क्रियाओं, भावों, परिस्थितियों और प्राणियों आदिके निमित्तसे जो अनुकूलता-प्रतिकूलता होती है, इससे अनुकूलतामें राग और प्रतिकूलतामें द्वेष होनेके कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुर्गुणों और झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि दुराचारोंकी उत्पत्ति होकर साधकका पतन हो जाता है। अतः राग-द्वेषके नाशके लिये गीतामें बतलाये हुए उपर्युक्त कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग आदिमेंसे किसी साधनका आश्रय लेना चाहिये। चाहे राग-द्वेष-का अभाव कहें या समभाव—एक ही बात है। जब राग-द्वेषका नाश हो जाता है, तब अनुकूलता-प्रतिकूलतामें समभाव स्वाभाविक ही हो जाता है। जैसे सिद्ध पुरुषमें स्वाभाविक समताका भाव ऊपर बतलाया गया है, वैसे ही उसमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि विकारोंका भी स्वाभाविक अभाव है। भगवान् कहते हैं—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
(गीता १२ । १७)

'जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।'

ऐसा भगवान्का अनन्य भक्त जो कुछ करता है, भगवान्की आज्ञा, प्रेरणा, संकेत और मनके अनुकूल ही करता है, उनके विरुद्ध नहीं करता। यदि विरुद्ध करता है तो वह भक्त ही नहीं है। वह भगवान्-के ही परायण और उन्हींपर निर्भर रहता है। भगवान् जो कुछ करते हैं, उसीमें वह मस्त रहता है। उसकी भगवान्में भक्ति—अनन्य प्रीति स्वाभाविक ही होती है। अतः उसमें राग-द्वेषका अभाव स्वाभाविक होता है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥
(गीता ११ । ५५)

'अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभाव-से रहित है—वह अनन्य भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।'

वही सच्चा भक्त है, जो अपने मनकी अनुकूलता-प्रतिकूलताको छोड़कर भगवान्के शरण हो जाता है और कठपुतलीकी भाँति भगवान् जैसे नचाते हैं, वैसे ही नाचता है। भगवान् उसके लिये जो कुछ विधान करते हैं, उसीमें वह आनन्द और प्रसन्नताका अनुभव करता है। वह अनिच्छा और परेच्छासे प्राप्त हुए सुख-दुःख आदि पदार्थों और परिस्थितियोंको भगवान्का मङ्गलमय विधान मानता है या भगवान्का भेजा हुआ पुरस्कार मानता है। एवं अपने द्वारा वर्तमानमें की हुई क्रियाके फलके सम्बन्धमें भी ऐसा ही समझता है; क्योंकि जीव कर्म करनेमें तो कुछ स्वतन्त्र है पर फल भोगनेमें सर्वथा परतन्त्र है। जैसे किसीने व्यापार करते समय माल खरीदा तो माल खरीदनेमें तो वह स्वतन्त्र है पर उसका फल जो नफा-नुकसान होता है, उसमें वह सर्वथा परतन्त्र है। अतः भगवान्ने अर्जुनसे यही कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
(गीता २ । ४७)

'तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें नहीं; इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।'

भगवद्भक्त कर्मफलको भगवान्का विधान या पुरस्कार मानकर हर समय आनन्दमग्न रहता है। किंतु इसकी अपेक्षा भी वह अधिक श्रेष्ठ है जो प्राणी और पदार्थमात्रको भगवान्का स्वरूप एवं क्रिया और घटनामात्रको भगवान्की लीला समझकर आनन्दमें मग्न रहता है, जिससे वह दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, निद्रा, आलस्य, प्रमाद, हर्ष, शोक आदि सम्पूर्ण विकारोंसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार जो स्त्री पतिको, पुत्र माता-पिताको, शिष्य गुरुको और साधक ज्ञानी महात्माको ईश्वरके समान समझकर अपने-आपको उनके समर्पण कर देता है, उनके किये हुए विधानको मङ्गलमय समझता है, अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलतासे रहित होकर उनकी आज्ञा, प्रेरणा, संकेत और मनके अनुकूल चलता है, वह भी सम्पूर्ण अनर्थोंके मूल राग-द्वेषादि दोषोंसे रहित हुआ समभावको प्राप्त होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

जैसे—किसी स्त्रीकी सुन्दर वस्त्राभूषण और स्वादिष्ट भोजन आदि प्राप्त करनेकी इच्छा है, किंतु पतिके मनमें वैराग्य होनेसे वह इनको पसंद नहीं करता तो वह पतिव्रता बड़ी प्रसन्नतासे अपनी इच्छाका त्याग करके पतिकी इच्छाके अनुकूल ही कार्य करती है। इसी प्रकार किसी पतिव्रता स्त्रीके यदि घरका काम करना, किसीके कठोर वचनोंको सुनना या अन्य किसी प्रकारके कष्टप्रद कार्य करना प्रतिकूल हो तो भी पतिकी प्रसन्नताके लिये वह उस प्रतिकूलताका बड़ी प्रसन्नतासे परित्याग कर देती है। अभिप्राय यह कि जो अपने मनके अनुकूल है; किंतु पतिके मनके प्रतिकूल है, वहाँ वह अपने मनकी अनुकूलताका त्याग कर देती है, जिससे मनकी अनुकूलतापर बार-बार आघात पड़नेसे वह नष्ट हो जाती है। तथा जो अपने मनके प्रतिकूल है, किंतु पतिके मनके अनुकूल है, वहाँ वह अपने मनकी प्रतिकूलताका त्याग कर देती है, जिससे मनकी प्रतिकूलतापर बार-बार आघात पड़नेसे वह भी नष्ट हो जाती है। इस प्रकार अपने मनकी अनुकूलता-प्रतिकूलता नष्ट हो जानेसे राग-द्वेषका नाश होकर समता आ जाती है और समतासे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

इसी प्रकार माता-पिताके अनुकूल हो जानेसे पुत्रका, गुरुके अनुकूल हो जानेसे शिष्यका एवं ज्ञानी महात्माके अनुकूल हो जानेसे साधकका राग-द्वेष नष्ट होकर उसमें समता आ जाती है, जिससे उसको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

इसीलिये भक्त प्रह्लादने दैत्य बालकोंको उपदेश करते हुए अन्तमें यही कहा—

असारसंसारविवर्तनेषु
मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि।
सर्वत्र दैत्यास्समतामुपेत
समत्वमाराधनमच्युतस्य॥
तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं
धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते।
समाश्रिताद् ब्रह्मतरोरनन्ता-
न्निस्संशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम्॥

(विष्णुपु० १। १७। ९०-९१)

'दैत्यबालको! मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ, तुम इस असार-संसारके विषयोंमें कभी संतुष्ट मत होना। तुम सर्वत्र समदृष्टि करो; क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी आराधना है। उन अच्युतके प्रसन्न होनेपर फिर संसारमें दुर्लभ ही क्या है? तुम धर्म, अर्थ और कामकी इच्छा कभी न करना; वे तो अत्यन्त तुच्छ हैं। उस ब्रह्मरूप महावृक्षका आश्रय लेनेपर तो तुम निस्संदेह (मोक्षरूप) महाफल प्राप्त कर लोगे।'

इसलिये परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे हमलोगोंको कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग या सत्सङ्गके द्वारा राग-द्वेषका नाश करके उच्चकोटिकी समता प्राप्त करनी चाहिये।

स्वर्गसुखभोग अनित्य है

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित श्रीशंकरस्वामीजी श्रीशंकरतीर्थजी महाराज)

[गताङ्कसे आगे]

वेदमें तैंतीस देवताओंकी कथा श्रुत 'शुक्लयजुर्वेद' में आयी है—परमेष्ठी (परमव्योममें—चिदाकाशमें—ब्रह्मपदमें—सत्यलोकमें स्थित पुरुषविशेष) प्रजापति (प्रजापालक) सर्वभूतस्वामीने निखिल पदार्थोंको ३३ देवताओंके द्वारा धारण कर रखा है—

त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् । (१४ । ३१)

अथर्ववेदसंहितामें कहा गया है—एक अद्वितीय परमात्माके अङ्गमें ३३ देवता हैं, वे उनके ही अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं, उनकी ही शक्ति हैं, ३३ देवता ही विश्वजगत्के रूप हैं। जो ब्रह्मवित् हैं, वे ही उन ३३ देवताओंका तत्त्व जानते हैं—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः॥
(१० । ७ । २७)

ऐतरेय ब्राह्मणमें अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषटकार—इन ३३ देवताओंका परिगणन हुआ है—'त्रयस्त्रिंशद् वै देवा अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च' (२ । ४)। शतपथ ब्राह्मणमें अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, इन्द्र और प्रजापति—इन ३३ देवताओंका कथन हुआ है—'अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति' (बृहदा० उप० ३ । ९ । २)। 'वसु'-संज्ञक देवता कौन हैं? अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, स्वर्ग, चन्द्रमा और नक्षत्र—ये आठ वसुसंज्ञक देवता हैं। इनका नाम 'वसु' क्यों हुआ? निवासार्थक 'वस' धातुके उत्तर 'उ' प्रत्यय करके (उणादि १ । ११) 'वसु' पद निष्पन्न हुआ है। जो बसता है, अथवा जिसमें सब कुछ बसता है, वह 'वसु' है। अग्नि आदि आठ 'वसु' देवता प्राणियोंके कर्म और कर्मफलके आश्रयस्वरूप हैं,* प्राणिसमूह अग्नि आदि देवताओंमें वास करते हैं, कार्य-कारण-संघातरूपसे अर्थात् शरीर और इन्द्रियाकारसे विपरिणत होकर अग्न्यादि देवता इस सम्पूर्ण जगत्का आश्रय-स्वरूप होकर विश्वजगत्को अपनेमें बसाये हुए हैं और स्वयं भी बसते हैं, इस निमित्त इनका नाम 'वसु' है—प्राणिनां कर्मफलाश्रयत्वेन कार्यकरणसंघातरूपेण तन्निवासत्वेन च विपरिणमन्तो जगदिदं सर्वं वासयन्ति वसन्ति च। ते यस्माद् वासयन्ति तस्माद् वसव इति (श्रीशांकरभाष्य, बृह० उ० ३ । ९ । २)।

---

* अग्निसे लेकर नक्षत्रपर्यन्त ईश्वरके अङ्गरूप आठ चेतन वसुदेवता ईश्वर-संकल्पसे प्राणियोंके कर्मफलके आश्रयस्वरूप रहनेसे मीमांसोक्त जड 'अपूर्व' को कालान्तरमें स्वर्गादि फलका जनक स्वीकार करना अनावश्यक है। इसलिये भाष्यकार भगवान् श्रीशंकराचार्यने कहा—'यच्च दीयते, ये च ददति, ये च प्रतिगृह्णन्ति, तेषामिहैव समागमो विलयश्चान्वक्षो दृश्यते; अदृष्टस्तु परः समागमः; तथापि मनुष्या ददतां दानफलेन संयोगं पश्यन्तः प्रमाणज्ञतया प्रशंसन्ति; तच्च कर्मफलेन संयोजयितरि कर्तुः कर्मफलविभागज्ञे प्रशास्तर्यसति न स्यात्; दानक्रियायाः प्रत्यक्ष-विनाशित्वात्; तस्मादस्ति दानकर्तॄणां फलेन संयोजयिता। अपूर्वमिति चेत्? न, तत्सद्भावे प्रमाणानुपपत्तेः। प्रशास्तुरपीति चेत्? न, आगमतात्पर्यस्य सिद्धत्वात्; अवोचाम ह्यागमस्य वस्तुपरत्वम्' (श्रीशांकरभाष्य, बृहदारण्यकोपनिषद् ३ । ८ । ९)। 'बृहदारण्यक उपनिषद्में' अन्यत्र उक्त हुआ है—'ब्रह्म रातिर्दातुः परायणम्' (३ । ९ । ७) अर्थात् ब्रह्म धन देनेवाले (अर्थात् कर्म करनेवाले) यजमानका परायण—परमगति है अर्थात् कर्मफल प्रदान करनेवाला है, अर्थात् यजमान जिस धनादिका दान करते हैं, ब्रह्म उसके कर्मफलकी योजना करते हैं। अतएव ब्रह्म कर्मीका एकमात्र आश्रय है—'तद् ब्रह्म … रातिः रातेः षष्ठ्यर्थे प्रथमा, धनस्येत्यर्थः; धनस्य दातुः कर्मकृतो यजमानस्य परायणं परा गतिः कर्मफलस्य प्रदातृ' (श्रीशांकरभाष्य)। 'सिद्धान्त', वर्ष १४, अङ्क १९ में 'मीमांसोक्त अपूर्वका स्वीकार अनावश्यक' नामक प्रबन्धमें इसका स्पष्टीकरण किया गया है।

वेदोंने 'वसु' देवतासे विश्वजगत्की आधारशक्तिको ही लक्ष्य किया है। 'वासुदेव' भगवान्का एक नाम है। विष्णुपुराणमें आया है कि जो सबका आधार है, वह 'वासुदेव' है—

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततोऽसौ वासुदेवेति विद्वद्भिः परिगीयते॥

'रुद्र'संज्ञक देवता कौन हैं, 'रुद्र' इस नामका सार्थकत्व क्या है? चक्षुरादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्-पाण्यादि पाँच कर्मेन्द्रियाँ—ये दस प्राण और ग्यारहवाँ मन, ये ग्यारह देवता 'रुद्र' संज्ञक हैं। अश्रु-विमोचनार्थक 'रुद्' धातुके उत्तर 'रक्' (उणादि २। २२) प्रत्यय करके 'रुद्र' पद सिद्ध हुआ है। वे ये ग्यारह देवता जिस समय प्राणियोंके कर्मफलोपभोगका क्षय हो जानेपर इस मरणशील शरीरसे उत्क्रमण करते हैं, उस समय ये उसके सम्बन्धी लोगोंको रुलाते हैं। इस रोदनमें निमित्त होनेसे इनका 'रुद्र' नाम हुआ है—

तद् यद् रोदयन्ति तस्माद् रुद्रा इति।
(बृहदा० उप० ३। ९। ४)

'आदित्य'संज्ञक देवता कौन हैं? संवत्सराख्य कालके अवयवभूत बारह मास ही द्वादश आदित्य हैं। चूँकि ये बारह महीने पुनः-पुनः परिवर्तित होते हुए प्राणियोंकी आयु और कर्मफलका आदान—ग्रहण यानी उपादान करते हुए चलते हैं, इसलिये 'आददाना यन्ति' इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'आदित्य' कहलाते हैं। 'काल' जगत्की उत्पत्ति-स्थिति-लयका कारण है; कालसे जगत् उत्पन्न होता है, कालसे स्थित रहता है और कालमें ही विलीन हो जाता है। सूर्य कालकी (कलनात्मक कालकी) उत्पत्तिका हेतु है—'सूर्यो योनिः कालस्य' (मैत्र्युपनिषत्)। यहाँ 'आदित्य' परिवर्तनके कारणरूपसे ही लक्षित हुआ है। 'इन्द्र' कौन है? स्तनयित्नु (अशनि), समन्तात् व्याप्त तड़ित्-शक्ति, प्राणियोंका बल और वीर्य 'इन्द्र' शब्दके अर्थ हैं। 'इन्द्र' शब्दसे श्रुतिने विश्वजगत्के प्राणको अर्थात् बल (Energy) को लक्ष्य किया है। निरुक्तमें इन्द्र और वायुको एक देवता कहा गया है। प्रजापति कौन है? यज्ञ ही प्रजापति है। विश्वजगत् 'यज्ञ' से उत्पन्न है। यज्ञ ही विश्वजगत्की स्थिति और लयका कारण है, यज्ञ ही विश्वजगत्का स्वरूप है; इसलिये यज्ञको 'प्रजापति' कहा गया है। विश्वजगत्की क्रिया ही यज्ञ-पदका अर्थ है। प्रजापति (ब्रह्मा) इस यज्ञका कारण है, इस हेतु प्रजापतिको यज्ञ-देवता कहते हैं।

ऋग्वेदसंहितामें कहा गया है—विश्वजगत् यज्ञात्मक पटस्वरूप है; जिस प्रकार पट (वस्त्र) तन्तुओंसे निर्मित—उत (woven) होता है, उसी प्रकार यज्ञात्मक विश्वजगत्-रूप पट पञ्चभूतादि तन्तुओंसे निर्मित है। यह सर्गात्मक यज्ञपट देवताओंके उद्देश्यसे भोक्तृवर्गकृत कर्मोंके द्वारा आयत—दीर्घीकृत होता है—

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मभिरायतः।
(८। १०। १२८)

अनुयज्ञं जगत् सर्वम्। (महाभा० शान्ति० २६७)

'यज्ञ' शब्द इष्टप्राप्तिके हेतुभूत कर्मके बोधकरूपसे, आन्तर और बाह्य इस द्विविध छान्दसव्यापारके अर्थात् शास्त्रोक्त अभ्युदय और निःश्रेयसप्राप्तिके हेतुभूत कर्मके वाचकरूपसे शास्त्रमें व्यवहृत हुआ है। *

---

* सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
(गीता ३। १०)

चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि चातुर्वर्ण्यं च केवलम्।
असृजत् स हि यज्ञार्थं पूर्वमेव प्रजापतिः॥
(महा० अनु० ४८। ३)

ऐहिक-पारत्रिक शुभ कर्ममात्र ही 'यज्ञ' है। शतपथ ब्राह्मणमें, गोपथ ब्राह्मणमें तथा छान्दोग्योपनिषद्में आता है—जो कर्म पवित्र करता है, देह, इन्द्रिय, प्राण, मन आदिको निर्मल करता है, वह कर्म यज्ञ है—

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवते। (छा० उप० ४। १६। ५)

श्रीमद्भगवद्गीतासे ज्ञात होता है, 'यज्ञ' से ही विश्व सृष्ट हुआ है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यः॥ (३। १४

कालिकापुराणमें भी 'यज्ञ' से सृष्टि की गयी है—

अन्नेन भूता जीवन्ति पर्जन्यादन्नसम्भवः
पर्जन्यो जायते यज्ञात् सर्वं यज्ञमयं ततः॥

भगवान् मनुने भी 'यज्ञ' से सृष्टि की है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥

ईश्वराराधनके निमित्त वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार कर्मानुष्ठानको भी 'यज्ञ' कहा गया है—

सहयज्ञेन स्वाश्रमोचितविहितकर्मकलापेन।
(श्रीमधुसूदन सरस्वती)

वेदादि शास्त्रोंमें 'यज्ञ' शब्द सर्वव्यापक परमेश्वरके वाचकरूपसे भी गृहीत हुआ है—

यज्ञो वै विष्णुः । (कृष्णयजुर्वेदसंहिता ३ । ५ । २)

वेदसे ज्ञात होता है कि प्रजापतिके मुखसे गायत्री छन्दके साथ प्रथमतः अग्निदेवताका आविर्भाव होता है; गायत्री छन्दके साथ अग्निदेवताके आविर्भावके अनन्तर उष्णिक् छन्दके साथ सविता देवताकी अभिव्यक्ति होती है। उसके बाद अनुष्टुप् छन्दके साथ सोमदेवताका और बृहती छन्दके साथ बृहस्पति देवताका प्रादुर्भाव होता है। उसके उपरान्त प्रजापतिसे विराट् छन्दके साथ मित्रावरुण देवताका, तदनन्तर त्रिष्टुप् छन्दके साथ इन्द्रदेवताका, तदनन्तर जगती छन्दके साथ विश्वेदेवताओंका विकास होता है। अग्न्यादि सप्तदेवताओंके साथ गायत्र्यादि सप्तछन्दोंकी उत्पत्ति 'प्राजापत्य यज्ञ' कहा गया है। अग्नि, सूर्य, सोम, बृहस्पति, मित्रावरुण, इन्द्र और विश्वदेवगण—इन देवताओंके साथ गायत्र्यादि छन्दःसमूहके यागमें ऋषि और मनुष्य आदिकी सृष्टि हुई है—

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।
विश्वान्देवाञ्जगत्याविवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ॥
चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे ।
पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥

(ऋग्वेदसंहिता, अष्टम अष्टक १० । १३० — १३२)

यहाँतकके विवेचनसे प्रमाणित हुआ है कि देवता और उनके रहनेके स्थान देवलोक अर्थात् स्वर्गलोक वेदसिद्ध हैं। देवताका अस्तित्व निश्चय करनेमें, जो देवदर्शन करते हैं, देवताओंके साथ वार्तालाप करते हैं, उनके उपदेशोंके अनुसार देवदर्शनोपयोगी साधन करना परम आवश्यक होता है। भगवान् पतञ्जलिदेवने कहा है—स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः (पा० द० २ । ४४)। अर्थात् यथाविधि स्वाध्यायसे साधक पुरुषके साथ अभीष्ट देवताओंका, ऋषियोंका और सिद्ध पुरुषोंका सम्प्रयोग (साक्षात्कार) होता है। अर्थात् यथाविधि स्वाध्यायशील पुरुष देवताका दर्शन लाभ कर सकता है, देवताओंके द्वारा उपकृत हो सकता है। करुणामय वेदमें भूयोभूयः यह सत्य विज्ञापित हुआ है।

परमर्षि जैमिनि मीमांसादर्शनके रचयिता हैं। वे श्रीनारायणावतार भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनजीके एक शिष्य हैं। भगवान् श्रीबादरायणने जिन चार शिष्योंको सम्प्रदायक्रमसे एक-एक वेदके प्रचार करनेका भार अर्पण किया था, परमर्षि जैमिनि उनमेंसे अन्यतम थे। इन्हें सामवेदका भार प्राप्त था। श्रीकुमारिलभट्टपादके तन्त्रवार्तिकसे ज्ञात होता है, परमर्षि जैमिनिने छान्दोग्यानुवाद आदि अपरापर कोई ग्रन्थ लिखा था तथा मीमांसाशास्त्रीय 'संकर्षणकाण्ड' नामक चतुरध्यायात्मक खण्डके ऊपर भी एक ग्रन्थकी रचना की थी। उसमें उपासनाकाण्डका तत्त्व आलोचित हुआ है। वस्तुतः वह ग्रन्थ भी कर्मकाण्डसम्बन्धी है, मीमांसादर्शनमें अनुक्त कर्मकाण्डीय विषयसमूह अनुपूरकरूपसे उसमें संगृहीत हुए हैं। प्राचीनोंकी उक्तिसे ज्ञात होता है, इस संकर्षणकाण्डका अपर नाम 'देवताकाण्ड' है। प्रपञ्चहृदय नामक ग्रन्थमें वर्णित हुआ है, चतुरध्यायात्मक इस ग्रन्थके प्रथम अध्यायमें प्रतिपादित हुआ है कि समस्त विशेष-विशेष मन्त्र ही देवतातत्त्वके प्रकाशक हैं; इसके द्वितीय अध्यायमें प्रतिपादन किया गया है कि विधि, अर्थवाद और समस्त नामधेय मन्त्रके ही अर्थात् देवताके ही विशेषत्व हैं; विधि, अर्थवाद, मन्त्र और नामधेयविषयक विशेष विचार द्वादशलक्षणी मीमांसामें ही निबद्ध है; संकर्षणकाण्डके तृतीय अध्यायमें उक्त हुआ है—देवगण स्वेच्छानुसार शरीरपरिग्रह कर सकते हैं, युगपत् बहु स्थानोंमें प्रकाशित हो सकते हैं और इच्छाक्रमसे तिरोहित (अदृश्य) भी हो जा सकते हैं; और चतुर्थ अध्यायमें स्थापन किया गया है कि सत्कर्मके फल रूपमें देवत्वलाभ किंवा अपवर्गप्राप्ति (क्रममुक्ति) होती है। इस रीतिसे देवतातत्त्व प्रतिपादित होनेके कारण ही संकर्षणकाण्ड ग्रन्थ उपासनाकाण्डके नामसे अभिहित होता है। यह ग्रन्थ वर्तमानमें समग्ररूपसे प्राप्त नहीं, इतस्ततः विक्षिप्त कतिपय सूत्रोंके रूपमें ही दृष्टिगोचर होता है। वर्तमानमें प्रसिद्ध मीमांसादर्शन परमर्षि जैमिनिप्रणीत होनेपर भी वे ही इस शास्त्रके प्रथम आचार्य नहीं हैं; चूँकि उन्होंने भी 'आत्रेय' (मी० द० ६ । १ । २६), 'ऐतिशायन' (मी० द० ३ । २ । ४३), 'कामुकायन' (११ । १ । ५७), 'कार्ष्णाजिनि' (६ । ७ । ३७), 'बादरायण' (१ । १ । ५), 'बादरि' (३ । १ । ३), 'लावुकायन' (६ । ७ । ३७) प्रभृति प्राचीन मीमांसक आचार्योंके नामका उल्लेख किया है। यह संगत भी है; क्योंकि वेदका अध्ययन और तदनुगत अनुष्ठानमें मीमांसा आवश्यक होनेसे मीमांसा वेदवत् प्राचीन

है। कालगतिसे जिस समय मनुष्यकी बुद्धिशुद्धिका ह्रास होने लगा—सम्प्रदायका ह्रास होने लगा—शास्त्रार्थ दुर्बोध हो उठा, उस समय बह्वर्थके सूचक (स्मारक) सूत्र-समूहका तात्पर्यग्रहण असम्भव हो उठा और तब महामुनि बौधायनने द्वादशलक्षणी मीमांसा, चतुर्लक्षण संकर्षणकाण्ड और चतुरध्यायी उत्तरमीमांसा (वेदान्त)—इन विंशति अध्यायोंके ऊपर 'कृतकोटिभाष्य' नामक एक अति विशाल भाष्य निबद्ध किया। उस अति बृहदायतन भाष्यग्रन्थको आयत्त करना कालक्रमसे कठिन हो उठा। इसे देखकर कारुणिक वृत्तिकार उपवर्षने उन विंशति अध्यायोंकी वृत्तिकी रचना की। इससे पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसाका सांकर्य देखकर कुछ कालके बाद पूर्वमीमांसाके स्वातन्त्र्यकी रक्षाके निमित्त भवदास भट्टने उत्तरकाण्डके चतुरध्याय छोड़कर केवल कर्म-मीमांसाके ही संकर्षणकाण्ड-सहित षोडश अध्यायके एक नातिविस्तृत भाष्यकी रचना की। ये सब ग्रन्थ अब प्राचीनोक्तिमात्रद्वारा ज्ञेय हैं। अनन्तर श्रीशबरस्वामीने केवलमात्र द्वादश अध्यायोंके केवलमात्र सिद्धान्तबोधोपयोगी परम गम्भीर अति संक्षिप्त भाष्यकी रचना की—जो भाष्य वर्तमानकालीन उपलभ्यमान दर्शन-ग्रन्थोंके भाष्योंमें प्राचीनतम और आदर्शस्थानीय है।

मीमांसादर्शन-सूत्रपर आपातदृष्टि डालनेसे दर्शनशास्त्रके आलोच्य सृष्टितत्त्व, आत्मतत्त्व और ईश्वरतत्त्वादिके विषयमें कुछ भी पता नहीं लगता। परंतु माधवाचार्यप्रणीत* 'शंकर-दिग्विजय' ग्रन्थमें तुषानलारूढ कुमारिलभट्टपाद भगवान् श्रीशंकराचार्य महाराजजीसे कहते हैं—'निरास्थमीशं श्रुतिलोकसिद्धं श्रुतेः स्वतोमात्वमुदाहरिष्यन्' (७ । ८९) अर्थात् वेदका स्वतःप्रमाणत्व स्थापन करनेके निमित्त ही मैंने ईश्वरके श्रुतिसिद्ध तथा लोकसिद्ध होनेपर भी उन्हें दूर रखा है। और मीमांसक-मतसे देवता शब्दमयी है अर्थात् शास्त्रोक्त चतुर्थीविभक्तियुक्त शब्द है अर्थात् त्यज्यमान द्रव्यके उद्देश्यीभूत ही देवता हैं। आपातदृष्टिसे देवताके विग्रहादिपञ्चक नहीं हैं; परंतु तत्त्वदृष्टिसे जिस नामसे, जिस शब्दसे, जिस भावसे जो भी देवता शास्त्रानुसार उद्देश्यीभूत क्यों न हो, वह सनातन एक ब्रह्म परमेश्वरसे अतिरिक्त और कोई नहीं है। इसलिये श्रुतिमें उक्त हुआ है—एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। (ऋग्वेद २ । १४८ । ३६) एष उ ह्येव सर्वे देवाः। (बृहदारण्यकोपनिषद् १ । ४ । ६) परमेश्वर ही समस्त देवतारूपसे विराजित है। अधिकंतु जब 'याग' का अर्थ है देवताके उद्देश्यसे विधि-विहित भावसे द्रव्यत्याग*, तब किसी प्रतीकमें शास्त्रानुसार सम्पादित न होनेपर भी वह्निरूप आधारमें देवपूजात्मक याग भी याग ही है। अर्थात् यागका आधार शास्त्रीय नियमसे प्रस्तुत वह्नि हो सकता है और अपरा पर-प्रतीक भी हो सकते हैं। इस दृष्टिसे कर्मवाद और देवपूजा परस्पर विरुद्ध नहीं हैं।

आपातदृष्टिसे मीमांसकमतसे मुक्ति निष्कामकर्मलभ्य है, सत्य; किंतु, स्वयं श्रुति ही 'तद् यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते' (छान्दोग्योप० ८ । १ । ६)—अर्थात् इस लोकमें सेवादिकर्मसे मिलनेवाला फल जैसे क्षयको प्राप्त होता है, उसी प्रकार परलोकमें भी पुण्यलब्ध फल क्षीण हो जाता है; और नास्त्यकृतः कृतेन' (मु० उ० १ । २ । १२), 'न कर्मणा' (कैवल्योपनिषद् १ । ४) अर्थात् कर्मके द्वारा नित्य पदार्थ (मोक्ष) प्राप्त नहीं होता—इत्यादि वचनोंसे नित्यमोक्षकी कर्मजन्यताका प्रतिवाद किया गया है। मीमांसक-मतसे स्वर्ग ही मुक्तिस्वरूप है। प्राचीन उक्तिके अनुसार—'यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्। अभिलाषोपनीतं च तत् सुखं स्वःपदास्पदम्।' अर्थात् जो सुखदुःखमिश्रित नहीं है, अपिच भोगके उपरान्त ग्रस्त अर्थात् ध्वंसको प्राप्त नहीं होता और अभिलाषोपनीत है अर्थात् जिसमें अभिलाषानुरूप वस्तु तत्क्षण मिलती है, वह सुख ही 'स्वर्ग' पदवाच्य है—इस वाक्यमें स्वर्गका जो लक्षण देखा जाता है, वह मुक्तिका ही नामान्तर है; क्योंकि मुक्तिमें ही भूमानन्द प्रकटित होता है और ब्रह्मलोकस्थित मुक्त अथवा मोक्ष्यमाण पुरुषके लिये ही संकल्पानुरूप अभिलाषोपनीत विषय उपस्थित होता है।

* ये ही माधवाचार्य शेष जीवनमें संन्यास लेकर 'विद्यारण्य-स्वामी'के नामसे प्रख्यात हुए थे। इनके ही भ्राता चतुर्वेदभाष्यकार विश्वविख्यात 'सायणाचार्य' हैं। अद्वैत वेदान्तके 'वैयासिकन्यायमाला', सुविख्यात 'पञ्चदशी', 'विवरणप्रमेयसंग्रह', 'जीवन्मुक्तिविवेक' आदि बहु निबन्ध इनकी रचनाएँ हैं। मीमांसाके सुप्रसिद्ध 'जैमिनीयन्याय-माला' वा 'अधिकरणमाला' और 'जैमिनीयन्यायमालाविस्तर' इनके ही मीमांसाशास्त्रवित्त्वके अपूर्व निदर्शन हैं।

* 'यजतिचोदना द्रव्यदेवताक्रियं समुदाये कृतार्थत्वात्' (मी० द० ४ । २ । २७) अर्थात् द्रव्य, देवता और त्यागात्मक कर्म—ये तीन मिलितभावसे 'यज्' धातुके अर्थ होनेसे देवताके उद्देश्यसे विधिपूर्वक द्रव्यत्यागका ही नाम 'याग' है।

यही 'संकल्पादेव पितरः समुत्तिष्ठन्ते' (छा० उ० ८ । १ । २) इत्यादि श्रुतिसे और वेदान्त-दर्शनके 'संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः' (४ । ४ । ८) इस सूत्रसे उद्घोषित हुआ है। बृहदारण्यकभाष्यवार्तिकमें श्रीसुरेश्वराचार्यने इसीलिये कहा है—**स्वर्गशब्दाभिधश्चायं पुमर्थो यो यथोदितः। स्वर्गमित्यादिभिर्वाक्यैस्त्रय्यन्तेष्वपि गीयते'** (सम्बन्धवार्तिक, १०९७)। इसका भावार्थ यह है कि स्वर्गशब्द परम पुरुषार्थका भी बोधक है। यह 'अहरहर्वा एवंवित् स्वर्गं लोकमेति' (छा० उ० ८ । ३ । ३) इत्यादि वेदान्तवाक्यसे भी बोधित होता है। सुतरां, यदि यही 'स्वर्ग' शब्दका अर्थ है, तो वह कर्मजन्य कैसे हो सकता है ? इस हेतु कहना होगा—कर्मजन्य जो स्वर्ग है—लोकविशेषमें भोग्य सुखविशेष है—वह स्वतन्त्र है। विशेषतः, मुक्तिमें तारतम्य नहीं है, यही शास्त्र-सिद्धान्त है। अथच मीमांसक-धुरीण श्रीसायणमाधवाचार्यने तदीय तैत्तिरीयसंहिताभाष्यमें कहा है—'स्वर्गश्च अनेकविधः' इत्यादि। किंतु यह कैसे सम्भव हो सकता है ? पुनः यदि मुक्ति कर्मजन्य ही होती तो आत्मतत्त्वबोधका प्रयोजन क्यों रहता ? अथच श्लोक-वार्तिकमें आत्मतत्त्वप्रतिपादकभाष्यके वार्तिकके उपसंहारमें मूर्तिमान् मीमांसाशास्त्रस्वरूप कुमारिलभट्टपादने कहा है—

इत्याह नास्तिक्यनिराकरिष्णु-
रात्मास्तितां भाष्यकृदत्र युक्त्या।
दृढत्वमेतद्विषयश्च बोधः
प्रयाति वेदान्तनिषेवणेन ॥

'इस प्रकारसे भाष्यकारने नास्तिकवाद-निरासनके उद्देश्यसे युक्तिपूर्वक आत्मवादका स्थापन किया है; परंतु आत्म-विषयक ज्ञान वेदान्तपरिशीलनसे दृढ़ताको प्राप्त होता है।' इस स्थलमें वेदान्तनिषेवणसापेक्ष आत्मबोध तो मुक्तिके निमित्त ही आवश्यकरूपसे उल्लिखित हुआ है, इसे कहना तो बाहुल्य-मात्र है; अथच ज्ञान और कर्म परस्पर विरुद्ध होनेके कारण तत्त्व-ज्ञानमें उनकी समुच्चय अर्थात् मिलितभावसे तत्त्वज्ञान-साधकता भी सम्भव नहीं है। इस कारण कहना पड़ेगा कि मुक्ति कर्मजन्य अथवा कर्मज्ञान-समुच्चयजन्य है, यह मत भी भाष्य-कारीय नहीं है; विशेषतः 'विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन' इत्यादि श्रुति कामनानिरपेक्ष कर्मको ही ब्रह्मजिज्ञासाका द्वार कहती है। यज्ञादि कर्मसमूह ब्रह्मज्ञानके निमित्त विहित हैं—यह 'सर्वापेक्षा यज्ञादिश्रुतेरश्ववत्' (व्याससूत्र ३ । ४ । २६) इस अधि-करणमें उक्त हुआ है। इस सूत्रका अर्थ है—जिस प्रकार अश्व रथमें उपयोगी होता है, उसी प्रकार ज्ञानोत्पत्तिमें यज्ञ, दान आदि समस्त आश्रम कर्मोंकी अपेक्षा रहती है। अपिच उत्पत्तिविधिके बलसे कर्म उत्पन्न होनेके पश्चात् उसकी फला-काङ्क्षा होती है; और तब उसमें स्वर्गादिकी कामना भी अन्वित हो सकती है—'यज्ञेन' इत्यादि वाक्यबोधित आत्मतत्त्व-विविदिषारूप फल भी अन्वित हो सकता है—**तमेतं वेदानु-वचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन** (बृह० उ० ४ । ४ । २२)। अर्थात् ब्राह्मणगण वेद-पाठ, यज्ञ, दान और मितभोजनरूप तपस्याके द्वारा उस आत्माको जाननेकी इच्छा करते हैं। एक ही यज्ञ स्वर्ग और विविदिषाका (ब्रह्मज्ञानेच्छाका) साधन है। इस कारण संक्षेपशारीरककारने कहा—

यज्ञेनेत्यादि वाक्यं शतपथविहितं कर्मवृन्दं गृहीत्वा
स्वोत्पत्त्याम्नायसिद्धं पुरुषविविदिषामात्रसाध्ये युनक्ति।
(२ । ६४)

अर्थात् शतपथब्राह्मणमें **'विविदिषन्ति यज्ञेन'** इत्यादि वाक्य उत्पत्तिवाक्यबोधित कर्म-कलापको पुरुषकी विविदिषाके निमित्त ही अर्थात् ब्रह्मजिज्ञासामें ही नियुक्त करता है, अर्थात् समस्त कर्मकी उत्पत्ति-वाक्यमें फलश्रुति न रहनेसे तत्परवर्ती स्वर्गादिफलबोधक वाक्य तथा 'यज्ञेन' इत्यादि वाक्य भी उसी फलाकाङ्क्षाकी निवृत्ति करते हैं; सुतरां, पुरुषकी आकाङ्क्षाके अनुसार स्वर्ग अथवा विविदिषा दोनो ही कर्मोंका फल हो सकते हैं। अधिकंतु बृहदारण्यकभाष्यवार्तिकोक्त परम पुरुषार्थरूप स्वर्ग (सम्बन्धवार्तिक १०९७), जो मुक्तिका ही नामान्तर है, वह जब श्रुति और युक्तिके अनुसार कर्मजन्य नहीं हो सकता, तब 'तादृश स्वर्ग कर्मसे मिलता है' इसका अर्थ यह है कि कर्म उस स्वर्गलाभका परम्परारूपसे कारण है।

वेदमन्त्रोंमें और छान्दोग्य, मुण्डक आदि उपनिषदोंमें तथा इतिहास-पुराणादिमें जब स्वर्गलोक (देवलोक) पुनः-पुनः वर्णित हुआ है, तब उसका अस्वीकार असम्भव है। विशेषतः, देवलोकके देवदेहके बिना तादृश निरतिशय-प्रीत्य-नुभवरूप स्वर्गसुखभोग [**'मनःप्रीतिकरः स्वर्गः'** (विवरणप्रमेयसंग्रह)] नहीं हो सकता। इस हेतु नित्य-कर्मसमूहकी चित्तशुद्धिफलकतावर्णनप्रसङ्गमें बृहदारण्यकभाष्य-वार्तिकमें श्रीसुरेश्वराचार्यने कहा है—

कामोऽपि शुद्धिरस्त्येव भोगसिद्ध्यर्थमेव सः।
विड्वराहादिदेहेन न ह्यैन्द्रं भुज्यते फलम् ॥
(सम्बन्धवार्तिक ११३०)

इसका फलितार्थ यह है—दिव्य भोगके निमित्त पवित्र दिव्य देह आवश्यक होता है; और वह तद्भोगप्रद कर्मके फलरूपमें ही होता है। उसी प्रकार नरकभोगके निमित्त तादृश देह भी आवश्यक होता है। इसलिये पातञ्जलदर्शन के **'क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः'** (२ । १२) इस सूत्रकी टीकामें वाचस्पति मिश्रने तत्रत्य व्यासभाष्यकी व्याख्यामें कहा है कि इस देहमें बहुवर्षव्यापी अत्यधिक-यातनामय नरकभोग सम्भव न होनेके कारण तदर्थतादृश देह आवश्यक होता है। वेदान्तदर्शन के **'संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ'** (३ । १ । १३) इस सूत्रमें कहा गया है कि यमालयमें साधारण प्राणियोंको पापोंका फलभोग करना पड़ता है। 'कठोपनिषद्' के यम-नचिकेता-उपाख्यानमें तथा ऋग्वेदके **'वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानमिह तर्पयध्वम्'** इत्यादि मन्त्रमें भी यह सुपरिस्फुट है।* सुतरां वेदमन्त्र, उपनिषद्, इतिहासपुराणादिके जो-जो अंश विधायक नहीं हैं अर्थात् विधिप्रतिपादनपरः नहीं हैं, उन्हें मीमांसकोंके प्रौढ़िवादके अनुसार स्वार्थमें अप्रमाण कहकर किंवा आध्यात्मिक व्याख्याके चापसे रूपककल्पनाके अन्धकारमय कुहरमें गिराकर उनकी वास्तवता निलीन करनेका उपाय नहीं है।

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है—**प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति॥** (१ । २ । ७) अर्थात् [संसार-सागरसे पार जानेके निमित्त] अष्टादश (अष्टादश-संख्यक=१६ ऋत्विक्, यजमान और यजमानपत्नी) द्वारा अनुष्ठित यज्ञरूपाः (यज्ञरूप) प्लवाः (नौकासमूह) येषु (जिनमें=जिन सकाम यज्ञोंमें) अवरं (निकृष्ट=ज्ञानरहित अथवा अस्थायी) कर्म (काम्य कर्म) उक्तम् (उपदिष्ट हुए हैं), एते (ये सब) हि (निश्चय ही) अदृढाः (अस्थायी हैं) [क्योंकि कर्मसे उत्पन्न फलका विनाश अवश्यम्भावी है]; [सुतरां] ये मूढाः (जो मूढ़ अर्थात् विचारहीन मनुष्य) एतत् (इस ज्ञानरहित निकृष्ट कर्मका) श्रेय (कल्याणप्रदरूपसे) अभिनन्दन्ति (आदर करते हैं अर्थात् यज्ञादिरूप सकाम कर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त रहते हैं) ते (वे) पुनः एव (पुनर्वार) जरामृत्युं (जरा और मृत्युको) अपियन्ति (प्राप्त होते हैं) [अर्थात् कुछ काल पुण्यकर्मका फल स्वर्गसुख भोगकर पुण्यक्षय होनेपर मर्त्यलोकमें जन्मते हैं]। **'अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्थाः इत्यभिमन्यन्ति बालाः। यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते'** (१ । ३ । ९) अर्थात् अविद्यायाम् (अविद्यामें=ज्ञानरहित कर्ममार्गमें) बहुधा (नाना प्रकारोंसे) वर्तमानाः (वर्तमान=अनुरक्त=प्रवृत्त) बालाः (अज्ञ मनुष्य) वयं (हम) कृतार्थाः (कृतकृत्य=सफलकाम) [हुए हैं]—इति (इस प्रकार) अभिमन्यन्ति (अभिमान करते हैं) यत् (चूँकि) कर्मिणः (कर्मासक्त मनुष्य) रागात् (कर्मफलमें आसक्ति रहनेके कारण) [शास्त्रोपदेशका लक्ष्य अथवा कर्मानुष्ठानका उद्देश्य] न प्रवेदयन्ति (नहीं समझ पाते), तेन (उस कारणसे) क्षीणलोकाः (पुण्यक्षय होनेसे स्वर्गसुख भोगनेमें असमर्थ) [सुतरां] आतुराः (दुःखी होकर) च्यवन्ते (स्वर्गलोकसे गिर जाते हैं)। **'इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति'** (१ । २ । १०) अर्थात् प्रमूढाः (अतिमूढ़ अर्थात् पुत्र, धन, वित्त आदिमें आसक्तिवश मोहयुक्त मनुष्य) इष्टापूर्त्त (इष्ट=वेदविहित यज्ञादि कर्म, पूर्त्त=स्मृतिविहित कूप-तड़ागादि-दानरूप कर्म) वरिष्ठं (सर्वोत्कृष्ट) मन्यमानाः (मानकर) अन्यत् (तदतिरिक्त और कुछ भी) श्रेयः (कल्याणप्रद साधन अर्थात् आत्मज्ञान) न वेदयन्ते (नहीं जान सकते); ते (वे मूढ़) सुकृते (सकाम कर्मसे लब्ध) नाकस्य (स्वर्गके) पृष्ठे (उपरिस्थानमें=इन्द्रलोकमें) [पुण्यफल] अनुभूत्वा (भोग करके) इमं लोकं (इस मर्त्यलोकमें) हीनतरं वा (अथवा इससे हीनतर लोकमें अर्थात् पश्वादिके शरीरमें अथवा नरकमें) आविशन्ति (प्रवेश करते हैं) [स्वर्गसुख-भोगके उपरान्त पुण्यक्षीण होनेपर संचित कर्मके फलानुसार पुण्य-पापके मिलनसे मनुष्यलोकमें और पापके आधिक्यसे नरकमें गिरते हैं]।

श्रुतिमें एक स्थानपर कहा गया है—**'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतम्'** अर्थात् चातुर्मास्ययागकारीके पुण्य अक्षय है। इस श्रुतिमें कर्मजन्य फलका नित्यत्व वर्णित

---

* श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा गया है—'संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च। पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥' (१ । ४२) अर्थात् वर्णसंकर पुरुष कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है। इनके पितर लोग भी पिण्ड और तर्पणरहित होकर नरकमें ही गिर जाते हैं। 'प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ। (१६ । १६) अज्ञानविमोहित मनुष्यविषयभोगोंमें आसक्त होकर महान् अपवित्र नरकमें गिरते हैं।

है। परंतु 'यदल्पं तन्मर्त्यम्' (छा० उ० ७ । २४ । १) और 'यत् कृतकं तदनित्यम्' अर्थात् जो अल्प अर्थात् परिच्छिन्न है वह मरणशील है, जो कृतिसाध्य है वह अनित्य है—इस प्रकार न्याय दृष्ट होता है। पुनः, स्वयं वेद भी स्वर्गादिश्रेयःसाधन अग्निहोत्रादिके फल स्वर्गादिको अनित्य बता रहे हैं—'तद् यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते ।' (छा० उ० ८ । १ । ६) अर्थात् जिस प्रकार इस संसारमें कृषि आदि कर्मके द्वारा उपार्जित सस्यादि भोग्यवस्तु नाशको प्राप्त होती है, उसी प्रकार परकालमें भी पुण्यद्वारा उपार्जित स्वर्गादि लोक भी क्षीण होता है। 'जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं, न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् ।' (कठोपनिषत् १ । २ । १०) अर्थात् शेवधिः (कर्मफलरूप स्वर्गादि सम्पत्) अनित्य है, यह मैं जानता हूँ; चूँकि अनित्य द्रव्यमय यज्ञादिसे वह नित्य ब्रह्म प्राप्त नहीं हो सकता, अतएव पूर्वोक्त न्यायविशिष्ट अर्थात् युक्तिविशिष्ट कर्मफलके अस्थायित्वकी प्रतिपादक छान्दोग्यश्रुति प्रबल है, और युक्तिविहीन कर्मफलके नित्यत्वकी बोधक श्रुति दुर्बल है। प्रबल श्रुति दुर्बल श्रुतिकी बाधक होती है। यदि कहा जाय कि श्रुतिका बाध होनेपर अप्रामाण्य होगा; श्रुतिका एक भी अक्षर व्यर्थ नहीं है; इसका उत्तर यह है कि यहाँ बाध-शब्दका अर्थ है संकोच। इस स्थलमें कर्मफलका जो अक्षयत्व उक्त हुआ है, उसका अर्थ बहुकालस्थायित्व है। अर्थात् शुभ कर्मफलके द्वारा मनुष्य एक कल्पपर्यन्त अमर रह सकता है। इस अर्थका साधक वाक्य 'विष्णुपुराण' में भी देखा जाता है—'आभूतसंप्लवस्थानममृतत्वं हि भाष्यते' अर्थात् एक कल्पपर्यन्त स्वर्गसुखभोगको पण्डितजन अमृतत्व कहते हैं। पुनः, तैत्तिरीय श्रुतिमें कथित हुआ है—'परागावर्त्ततेऽध्वर्युः पशोः संज्ञप्यमानात्'—यज्ञमें पशुवध करनेके कारण स्वर्गभोगके अनन्तर याज्ञिकको पुनः मर्त्यलोकमें जन्म लेना पड़ता है। और 'श्रीमद्भगवद्गीता' में उक्त हुआ है—'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।' (९ । २१) अर्थात् वेदोक्त याग-यज्ञादिपरायण मनुष्य उनके प्रार्थित विपुल स्वर्गसुखका उपभोग करनेके उपरान्त पुण्यक्षय होनेपर पुनरपि मर्त्यलोकमें प्रवेश करते हैं। 'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।' (८ । १६)—शास्त्रमें सप्तलोकका वर्णन आता है—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोक वा ब्रह्मलोक। मनुष्य पुण्यबलसे ये सब लोक प्राप्त होनेपर भी [ज्ञानलाभ न होनेपर] पुण्यक्षयके उपरान्त वहाँसे वापस आकर पुनः इस संसारमें जन्म प्राप्त करते हैं। 'यान्ति देवव्रता देवान्' (९ । २५)—जो देवताओंका पूजन करते हैं, वे देवलोकमें (स्वर्गधाममें) जाते हैं। 'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः' (१४ । १८)—सत्त्वप्रधान मनुष्य [मृत्युके उपरान्त] ऊर्ध्वलोकमें (देवलोकमें) जाते हैं। 'पुण्यैर्देवत्वमाप्नोति' (सूतसंहिता)—पुण्यकर्मके फलसे मनुष्य देवजन्म पाता है। 'देवत्वमथ मानुष्यं पशुत्वं पक्षिता तथा । तिर्यक्त्वं स्थावरत्वं च प्राप्यते वै स्वकर्मभिः ॥' (पद्मपुराण, भूमिखण्ड ८१ । ४३) अर्थात् मनुष्य अपने कर्मके अनुसार देवत्व, मनुष्यत्व, पशु-पक्षी आदि तिर्यग्योनि तथा स्थावर जन्म प्राप्त करते हैं। 'कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः' (महाभा० शान्ति० १७२ । ५) 'निरयं प्राप्स्यति महत् कृतघ्नोऽयमिति प्रभो' (१७३ । १८) तीर्थसेवन और तपस्याके द्वारा भी कृतघ्न पुरुषका उद्धार नहीं होता उसे दीर्घकालपर्यन्त नरकमें भीषण यन्त्रणा भोगनी पड़ती है।

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मावघट्टनम् ।
नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम् ॥
परस्वहरणाशौचं देवतानां च कुत्सना ।
निकृत्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः ॥
यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च संतता ।
उपलक्षयेत् जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ॥
दया भूतेषु सद्वादः परलोकप्रतिक्रिया ।
सत्यं भूतहितायोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसंगमः ।
सत्क्रियाभ्यसनं मैत्रमिति बुध्येत पण्डितः ॥
अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च ।
स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम् ॥

(मार्कण्डेयपुराण १५ । ३९–४४)

अर्थात् परनिन्दा, कृतघ्नता, दूसरोंके गुप्त भेदका प्रकाश, निष्ठुरता, निर्दयता, परस्त्री-सम्भोग, परधनापहरण, अपवित्रता, देवनिन्दा, शठतापूर्वक परवञ्चना, कृपणता, मनुष्योंका प्राणनाश तथा अन्यान्य निषिद्ध कर्मोंमें निरन्तर प्रवृत्ति ये सब नरकागत मनुष्यके चिह्न हैं। और जीवके प्रति दया, धार्मिक कथा, परलोकप्राप्तिके निमित्त पुण्यकर्मानुष्ठान, सत्यभाषण, निखिल भूतोंके लिये हितकारक

वचन, वेद स्वतःप्रमाण हैं—इस प्रकार विश्वास, गुरु, देवता, ऋषि, सिद्ध और महापुरुषोंका सत्कार, साधुमहापुरुषोंका सङ्ग, शुभकर्मका अभ्यास, सबके प्रति मित्रभाव और अन्यान्य धार्मिक कर्म—ये सब स्वर्गागत पुण्यात्मा पुरुषोंके चिह्न हैं। छान्दोग्योपनिषद्में उक्त हुआ है—'अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान् षड्दक्षिणैति मासांस्तान्, नैते संवत्सरमभि प्राप्नुवन्ति। 'मासेभ्यः पितृलोकम्, पितृलोकादाकाशम्, आकाशाच्चन्द्रमसम्।' (५ । १० । ३, ४) अर्थात् जो लोग ग्राममें—गृहस्थाश्रममें रहकर 'इष्ट' कर्म (अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्म), 'पूर्त्त' कर्म (वापी, कूप, तड़ाग एवं बगीचे आदि लगवानेका नाम 'पूर्त्त' है) और 'दत्त' कर्म (वेदीसे बाहर दानपात्र व्यक्तियोंको यथाशक्ति धनादि दान)—के रूपमें उपासना करते हैं, वे धूमाभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं; उस धूमाभिमानी देवतासे अतिवाहित हुए वे धूमसे रात्रिदेवताको, रात्रिसे कृष्णपक्षाभिमानी देवताको तथा कृष्णपक्षसे दक्षिणायनके छः महीनोंके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं। ये कर्मकाण्डी संवत्सराभिमानी देवताको प्राप्त नहीं होते; वे दक्षिणायनके महीनोंसे पितृलोकको, पितृलोकसे आकाशको और आकाशसे चन्द्रलोकको प्राप्त होते हैं। याग-यज्ञादिके पुण्यफलरूपमें इन देवताओंद्वारा लक्षित मार्गसे जो लोग चन्द्रलोकमें जाते हैं, वे कर्मी पुरुष स्वर्गलोकको प्राप्त होकर वहाँ स्वर्गसुख भोगनेके अनन्तर इस मर्त्यलोकमें वापस आते हैं, अर्थात् वहाँ कर्मोंका क्षय होनेतक रहकर वे फिर इसी मार्गसे अर्थात् जिस प्रकार गये थे, उसी प्रकार लौटते हैं—'तस्मिन् यावत्संपातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्त्तन्ते।' (छान्दोग्य उप० ५ । १० । ५) "तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते" (श्रीगीता ८ । २५)*

महामुनि यास्कने कहा है—'अथ ये हिंसामाश्रित्य विद्यामुत्सृज्य महत् तपस्तेपिरे चिरेण वेदोक्तानि वा कर्माणि कुर्वन्ति ते धूममभिसम्भवन्ति ...... पुनरेवेमं लोकं प्रतिपद्यन्ते।' अर्थात् जो लोग ज्ञानसाधनको त्यागकर हिंसामय वेदोक्त याग-यज्ञादि कर्मरूप महत् तपस्या दीर्घकालतक करते हैं, वे धूमादि मार्गसे स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं,······ और जिस कर्मफलसे स्वर्गलोकमें जाते हैं, उस कर्मफलके समाप्त होनेके साथ ही पुनः इस मर्त्यधाममें जन्मते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

> इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः।
> भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान् दिव्यान् निजार्जितान्॥
> तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत् पुण्यं समाप्यते।
> क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कालचालितः॥
> (११ । १० । २३, २६)

अर्थात् इस संसारमें यज्ञानुष्ठानसे देवपूजन करके याज्ञिक स्वर्गलोकमें जाता है। वहाँ स्वर्गधाममें अपने पुण्यकर्मसे उपार्जित देवोंकी भाँति नाना दिव्यभोग पुण्य क्षीण न होनेतक भोगकर आनन्दमें रहता है। परंतु जिस पुण्यफलसे देवलोकमें गया था, उसका क्षय होनेपर जिस मार्गसे वहाँ गया था, इच्छा न रहनेपर भी कालसे चालित होकर वह उसी मार्गसे उसी प्रकार लौटता है।

सुतरां, कर्मफल स्वर्गादि कदापि नित्य नहीं हो सकता। जहाँ कर्मफलका नित्यत्व शास्त्रमें कथित हुआ है, वहाँ आपेक्षिक नित्यत्व अर्थात् बहुकालस्थायित्वरूप नित्यत्व समझना चाहिये। लोकजननी श्रुतिने जिस प्रकार कर्मफलका अनित्यत्व प्रदर्शित किया है, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानका भी परमपुरुषार्थसाधनत्व दिखाया है—'ब्रह्मविदाप्नोति परम्।' (तैत्तिरीय आरण्यक २ । १ । १) अर्थात् ब्रह्मज्ञ व्यक्ति परमपुरुषार्थ (मुक्ति) को प्राप्त होते हैं। यह तैत्तिरीय श्रुति एकमात्र ब्रह्मज्ञानको ही अपुनरावृत्तिरूप मुक्तिका उपाय स्पष्ट शब्दोंमें कह रही है। 'अतोऽन्यदार्त्तम्', 'यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।' (छान्दोग्य उप० ७ । २४ । १) अर्थात् एकमात्र ब्रह्म ही अमृत (नित्य) है, ब्रह्मभिन्न समस्त वस्तु क्षणस्थायी है। अतएव स्वर्गसुखभोग अनित्य है।

---

* बृहदारण्यकोपनिषद्, षष्ठ अध्याय, द्वितीय ब्राह्मणके षोडश मन्त्रमें भी यह सिद्धान्त किया गया है—'अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकाञ्जयन्ति ते धूममभिसम्भवन्ति ······ ते एवमेवानुवर्त्तन्ते।'

शक्ति-निपात

(लेखक—श्रीवशिष्ठजी)

विदेशियोंने इस 'मनुष्य'के व्यक्तिगत जगत्‌में अपनी अन्ध-प्रवृत्तिके अनुसार यथेष्ट विहार किया है। वे इसे यों ही नहीं छोड़ देंगे। युद्ध करेंगे स्वदेशियोंसे, प्रकाश और शक्तिसे। प्रकाशको अन्धकारसे ढँकना चाहेंगे और स्वदेशियोंको पीछे ढकेलना—वहाँ ढकेल देना, जहाँ वे अबसे पहिले छिपे पड़े कालयापन कर रहे थे और प्रकाश और शक्तिको ग्रहण तथा धारण करनेकी सामर्थ्य खोकर निस्तेज तथा निर्वीर्य बन चुके थे। चिरकालके अन्धकार और दिव्यतासे, विच्छेदसे मानव-सत्ताकी नगरीकी दीवारें अपारदर्शक (Untransparent) और अवरोध्या (insulated) बनी हुई हैं। सूर्य चमक रहा है अन्तरमें, क्योंकि वह अब अनावृत हो चुका है; किंतु त्रिगुणोंके बीचमें जो विच्छेद, जो अवरोध, जो अपार-दर्शन जमकर बैठ गया है, वह तेजस्‌को, प्रकाश तथा शक्तिके गमनको, प्रसारको रोकता है और वे विदेशी अन्ध-प्रवृत्तियाँ इस अवरोध तथा अंध-पपड़ीको कड़ा तथा मोटा करनेके लिये सहस्रबाहु बन जाती हैं। किंतु महासूर्यसे आती हुई शक्ति, डायनमोकी बिजलीकी ऊष्मा दीवारोंपर चढ़ी हुई एवं दीवारोंमें ओत-प्रोत इस रेत, चूना तथा सज्जीकी पपड़ीको, इस त्रिगुणकी पपड़ीको पारदर्शक काँच बना डालती है। जिससे प्रकाश ओत-प्रोत हो जाय, चर-चरकर टूट जानेवाली पपड़ी पारदर्शक सुदृढ़ काँच बन जाय; असंगति, विच्छेद एवं विरोधको त्यागकर त्रिगुण ज्योति, शक्ति, आनन्द तथा शान्तिका रूप ले ले और मानव-सत्ताकी नगरीके कोने-कोनेमें प्रकाश देदीप्यमान हो उठे।

जहाँ-जहाँ प्रकाश पहुँचता रहेगा, वहाँ-वहाँसे विदेशी अन्ध-प्रवृत्तियाँ खिसककर सत्ताके किसी अँधेरे कोनेमें, किसी पाताल अवचेतनाकी गुफामें जा-जाकर छिपती रहेंगी; किंतु रेत, चूना, सज्जीरूपी त्रिगुणकी दीवारें जब दिव्य सुदृढ़, पारदर्शक काँच बन जायँगी, जो प्रकाशको ओत-प्रोत ही नहीं करेंगी, बल्कि प्रतिबिम्बित भी, तब इन विदेशी अन्ध-प्रवृत्तियोंको या तो इस मनुष्य-सत्तारूपी देशको त्यागकर चला जाना होगा या फिर उन्हें मानव-सत्तामें रहनेके लिये, दिव्यतामें रूपान्तरित होकर स्वदेशी बनकर रहनेके लिये आत्मसमर्पण करना पड़ेगा, ताकि सूर्यतेज उन्हें प्रकाशप्रिय दिव्य बना सके। एक-एक रन्ध्र पारदर्शक एवं प्रतिबिम्बक (Reflector) हो जायगा इस दिव्य, सूक्ष्म, इन्द्रियातीत भागवत-ज्योतिकी व्यापकतामें। तब अन्धताको छिपनेके लिये इस 'मानव' नगरी—'मनुष्य' राज्यके किसी अणुमें स्थान न मिलेगा।

मानव-सत्ताकी स्वदेशी प्रजाको सूर्योदयके प्रकाशमें निर्भीकता मिलेगी। सब कुछ नहीं तो, बहुत कुछ देखने-जाननेका अवसर मिलेगा। यों ही संशय आदिके आखेट न होंगे। हमारी सत्ताकी संशयग्रस्त कैकयीको साफ दिखायी दे जायगा भरतका हृदय—श्रीराम और श्रीसीताका हृदय और जिससे भयभीत एवं शङ्कित थी उस महारानी कौसल्याका हृदय तथा खुली हुई पुस्तकके पृष्ठकी तरह अयोध्याकी प्रजाका हृदय। वह स्पष्ट देख लेगी भरत राज्य ग्रहण न करेंगे, श्रीराम सीता-भरतसे कहीं अधिक उसका आदर करेंगे। कौसल्या भरतको रामके समान ही प्यार करेंगी। तब इन विदेशी अन्ध-प्रवृत्तियोंकी कुमन्त्रणाकी ओर मानव-सत्ताके राज्यमें कोई कर्णपात भी न करेगा। यह उदासीनता, यह असहयोग इन विदेशी अन्ध-प्रवृत्तियोंको निस्तेज, निष्प्रभ तथा अशक्त कर देगा।

नागरिक डरे हुए थे इन विदेशी अन्ध-प्रवृत्तियोंसे, क्योंकि कुछ तो नगरमें अँधेरा होनेसे इन नागरिकोंको सत्यासत्य कुछ सूझता न था। अतः वे इन प्रवृत्तियोंका आदर एवं अनुकरण करनातक कल्याणप्रद समझते थे, दूसरे वे अन्ध-प्रवृत्तियाँ थीं त्रिगुणात्मक अहंकार सरकारकी अन्तरङ्ग सदस्याएँ। इन्हींके सुझावपर तो देशका सारा कारोबार निर्भर करता था और अब सरकारने इनकी न सुननेका निश्चय कर लिया था तथा अन्तस्तलमें प्रतिष्ठित श्रीमहाराजने स्वयं शासनकी बागडोरको सँभालने तथा मन्त्री-मण्डलको अपने दिव्य आदेशसे निरन्तर कृतार्थ करनेका वचन दे दिया था।

प्रत्येक नागरिकमेंसे संशय, भय, दुश्चिन्ता निर्वासित की जा रही थी और श्रद्धा, अमरता, साहस, मन्यु, स्वत्व, सामर्थ्य फल-फूल रहे थे। नरतनुधारी अनन्त सर्वलोकमहेश्वर मानव गुरुके रूपमें अब इस शिष्य, इस मनुष्य-जगत्-रथके सारथि बन गये हैं। इन अनन्तके हाथमें है व्यवस्था अनन्त शक्तियोंकी; क्योंकि ये उन महान् शक्तियोंमें भी, उन अन्ध-प्रवृत्तियोंमें भी दूसरे तथा तीसरे गुप्तचरसे बने पहलेसे ही विराजमान हैं। प्रथम तो इस मनुष्य-राज्यकी प्रजाने अज्ञानके

कारण और मन्त्री-मण्डलके चिरकालसे इन विदेशी अन्ध-प्रवृत्तियोंके हाथकी कठपुतली बने रहनेके कारण सिंह-शावक होते हुए भी अपने आपको मेमना (भेड़का बच्चा) समझ लिया है, जो गड़रियेके बाँसके स्पर्शमात्रसे पालतू पशुकी तरह भेड़ोंके बीचमें सिर झुकाकर डरा, सहमा-सा चलता है। अपने सामर्थ्यको भूल जानेपर, विदेशियोंके भ्रान्त सुझावोंसे भटककर यह प्रजा आपसका विश्वास खोकर शङ्कित एवं संशयग्रस्त हो चुकी है। संगठन तथा सुसंगतिका पता नहीं। तीनों गुणोंकी तीन सभाएँ अविश्वास एवं संशयके वशीभूत होकर आपसमें लड़ती हैं और जब जो अवसर पाती है, प्रधानपदको झपट लेती है। अब सूर्योदय होनेपर सब अन्तर्देवके आदेशपर चलनेको कटिबद्ध हो गये हैं। धारणा, संकल्प, शक्ति प्रत्येकमें दृढ़ होती जा रही है दिव्यताके प्रति ग्रहणशील तथा आज्ञाकारी बननेके लिये।

प्रत्येक नागरिक इस 'मानवता'के व्यक्तिगत जगत्में निश्चयात्मकरूपसे कृतसंकल्प होकर घोषणा करने लग गया है—'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं इस मानव-सत्तारूपी राज्यका मूल निवासी हूँ। अन्तःप्रतिष्ठित अधीश्वर-की प्रजा हूँ।' जो विदेशियोंकी सलाहपर ही निर्भर करता था, वह मनोमय संकल्प भी अब कृत-संकल्प होकर अन्तःप्रतिष्ठित महाराजकी अनुमतिसे उन अनन्तके अवतरण एवं अभिव्यक्ति-के लिये यह घोषणा कर बैठा है। 'अशुभ आगन्तुक चारो ओर शिकार ढूँढ़ रहे हैं, यहाँतक कि वे कभी-कभी दरवाजे खटखटाते तथा खिड़कियोंसे झाँकनेकी कोशिश करते हैं। मैंने तमाम दरवाजे तथा खिड़कियाँ बंद कर दी हैं। और अब न दयाभावसे, न उत्सुकतासे मैं उन्हें खोलूँगा। वे शीत रात्रिमें चिल्लायें या अपने रास्ते लगें या नष्ट हों। मैं अपने अतिथि-की प्रतीक्षामें हूँ, जो अन्तरमें अपने-आपको प्रकट करेंगे। उन्हींके लिये मैं वेदीको स्वच्छ, स्नेहशील बनाये हुए हूँ। संतोष तथा तल्लीनतासे अग्निकी रखवाली कर रहा हूँ। अग्निशिखाएँ प्रदीप्त हो रही एवं आरोहण कर रही हैं—जिनमेंसे प्रत्येक वह वाणी है, जो प्रियतमके आगमनकी प्रार्थना तथा पुकार करती है।

'अन्तरात्मे ! उनकी मधुर चरण-ध्वनिको सुनो। अन्य वाणियोंकी ओर कर्णपात मत करो, हृदयकी समस्त उत्सुकता-को निश्चल नीरवतामें समेट लो। लो ! उनके पायलके संगीतके साथ गम्भीरताएँ बज रही हैं*।'

इस प्रकार स्वराज्य प्राप्त हो जानेपर इस मनुष्य-राज्यको किसी विदेशीकी किसी प्रकारकी मन्त्रणाकी, सुझावकी जरूरत नहीं रहेगी, कारण अन्तःप्रतिष्ठित विश्वराट्-प्रतिनिधिको सदैव ही अनन्तका दिव्य परामर्श, दिव्य ज्ञान-प्रकाश तथा सर्व-शक्तियाँ उपलब्ध हैं। अनन्तको धारण किये हुए भगवान् गुरु, अनन्त ब्राडकास्टिंग स्टेशन तथा अनन्त डायनमो हैं। अबाध विद्युत्-धारा, विद्युत्-शक्ति एवं विद्युत्-प्रकाशको लिये हुए इस 'मनुष्य' व्यक्तिगत जगत् इस ससीम बैटरी सेटके रन्ध्रमें भ्रमण कर रही है।

इतना ही नहीं, आगे चलकर इस रेडियोको ब्राडकास्टिंग स्टेशन, इस बैटरी सेटको डायनमो, सान्तको अनन्त, नरको नारायण, स्वराज्यको दिव्य साम्राज्य बनना है, सर्वत्र देश-अदेश, आधार-आधेय, यन्त्र-अयन्त्र, आश्रय-निराश्रयको सर्वाङ्गीण दिव्य, सशक्त एवं आलोकित करते हुए ताकि स्वराज्य-में नहीं बल्कि सर्वलोकमहेश्वरके साम्राज्यतकमें भी डिंडिम नादसे यह घोषणा गूँज उठे '(चेतनाकी) बहतीके वे द्वार खुले जब होंगे, कहाँ छिपोगे पाप ! घुसे अणु-अणुमें ?' तब इन यथेच्छगामी विदेशी अन्ध-प्रवृत्तियोंको भी शरणागत होकर दिव्य बनना पड़ेगा।

बहुत कठिन है ········ बहुत सरल है

बहुत कठिन है, बहुत कठिन है मन को ठीक रास्ते रखना।
सरल नहीं है, सरल नहीं है मत्सर-दम्भ-लोभसे बचना॥
पर जो इन सबसे बच जाये,
जो मनको सीधा रख पाये,
कठिन नहीं है, कठिन नहीं है वहाँ 'शिवम्-सत्यम्'का रहना।
वहाँ सरल है, बहुत सरल है सुख-संतोष-शान्तिका बसना॥

—बालकृष्ण बलदुवा

* To the height (उच्चताके प्रति)।

जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं

(लेखक—डॉ० श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी पी-एच्० डी०)

नाम-रूपात्मक यह जगत् द्वित्वप्रसूत है। यह सर्वथा द्विधा है। ये दोनो एक साथ स्थित हैं—एक दूसरेके पूरक हैं। एक तो है यह दृश्यमान बाह्य जगत्, जिसे हम स्थूल जगत् कहते हैं। दूसरा है हमारा मानसिक जगत्। अन्य लोकके पदार्थोंके स्वरूपों एवं दृश्योंकी सृष्टि इसी जगत्में होती रहती है। जब हमारी सृजनात्मक वृत्ति जाग्रत् होती है, तब हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ इसी मानसिक जगत्में विविध रूपोंकी सृष्टि, नाना गतियोंका संचार और हमारी वृत्तियोंका परिष्कार किया करती हैं।

ये दोनो जगत् देश-काल-परक हैं। इनसे परे—देश-कालकी सीमाओंके परे आत्म-जगत् है। यहाँ निम्न दोनो जगत्से भिन्न केवल विशुद्ध चेतनाकी स्थिति है। नाम-रूपात्मकताकी सीमाओंका उल्लङ्घन करनेके पश्चात् ही हमारी चेतना इस 'आत्म-जगत्' का स्पर्श करनेमें समर्थ होती है।

चेतनाकी परिधिके विस्तारका ही नाम विकास है। मानव-जीवनका उद्देश्य 'विकास' अथवा चेतनाका विकास है। इसकी प्राप्तिकी ओर लक्ष्य करते हुए ही सनत्कुमारने देवर्षि नारदसे कहा था कि 'परा विद्याके ज्ञानके अभावमें संसारका समस्त ज्ञान अपूर्ण अथवा निरर्थक है।'

मानवकी चेतनाके पाँच स्तर हैं अथवा मानवकी चेतना सामान्यतः पाँच रूपोंमें स्थित रहती है। हम यत्नपूर्वक जिस स्तरपर उसका उपयोग करते हैं, हमारे विकासका स्तर वही समझना चाहिये। चेतनाके पाँच स्तर ये हैं—

स्थूल (Physical), सूक्ष्म (Astral), बौद्धिक (Mental) (क) निम्न (ख) उच्च तथा आत्मिक (Causal)।

इन स्तरोंपर हमारी प्रेरक शक्ति क्रमशः इस प्रकार होती है—मूल वृत्तियाँ (Instincts), मनोवेग (Impulses), सामान्य ज्ञान (Intelligence), अन्तः-ज्ञान, (Intuition), तथा विशुद्ध ज्ञान (Integration)। सामान्य ज्ञान तर्कबुद्धि एवं विश्लेषणहेतुक होता है। अतः ज्ञानकी प्राप्ति मानसिक जगत् अथवा मनोवेगोंकी सीमाओंके परे होती है। इसके परे देश-कालकी सीमाके आलम्बनका सर्वथा लोप हो जाता है और जीव विशुद्ध चेतना—एकरसताके आनन्दका भोग करता है। इस स्थितिको प्राप्त चेतना सर्वथा अभेदात्मक, संश्लिष्ट (Integrated) होती है।

स्थूल जगत्की भेदात्मक चेतना क्रमशः अभेदात्मक होती हुई सर्वथा संश्लिष्ट अथच एकरस एवं अखण्ड बन जाती है। संश्लेषणपरक चेतना (Integrated Consciousness) सत्यकी उपलब्धि है। तदनुकूल आचरण सर्वथा अहिंसा-मय एवं सुख-शान्तिके विस्तारका हेतु होता है। दर्शनके क्षेत्रमें जो अखण्डता अथवा 'योग' है, वही व्यवहारके जगत्में अहिंसा, विश्व-प्रेम, सर्वभूत-हित-कामना, बन्धुत्व, शील आदि नामोंसे अभिहित होता है।

कतिपय महापुरुषों अथच आदर्श व्यक्तियोंके प्रयासके परिणामस्वरूप ही विश्व अपनी प्रस्तुत उन्नत दशा एवं विकसित स्थितिको प्राप्त हो सका है। हमारे आदर्श समस्त महापुरुष भेदात्मक बुद्धिके परे संश्लिष्ट चेतनाद्वारा प्रेरणा प्राप्त करके स्वार्थकी अपेक्षा परमार्थमें अधिक रत रहनेवाले व्यक्ति रहे हैं। श्रीशङ्कराचार्य, बुद्ध, ईसा आदिने कदाचित् ही अपने विषयमें कभी विचार किया हो। तुलसीका 'स्वान्तः-सुखाय परजनहिताय' ही था, और उसीके द्वारा उनको परम विश्रामकी प्राप्ति हुई थी। जो परहित-चिन्तनमें निरत हैं, उन्हें अपने लिये चाहिये ही क्या? जटायुने परहित-निरत रहकर प्राण-त्याग किया। उसके लिये भुक्ति-मुक्ति सब कुछ तुच्छ थे। यथा—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरन कामा॥

जीवन-व्यापी चेतना नाम और रूपकी सीमाओंको अस्वीकार करती हुई प्राणिमात्रमें समानरूपसे संचरण करती है। 'राम' शब्दका तात्पर्य ही यह है—जो सबमें रमण करे। अपने विकास-स्तरके अनुरूप हम उसका अनुभव या साक्षात्कार करते हैं—

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥

आत्माका गुण संश्लेषण है। आत्मा और परमात्माका यही सम्बन्ध-सूत्र है। जीव संश्लेषणको त्यागकर विश्लेषण-की सीमाओंमें बद्ध होकर अपने स्वाभाविक एवं जन्मजात आनन्दसे बञ्चित रहता है। इन सीमाओंका उल्लङ्घन करते

ही वह आनन्दरूप परमात्माके स्वरूपको प्राप्त होता है। इसी कारण तुलसीके राम मानव भी हैं और ईश्वर या परब्रह्म भी हैं। परब्रह्मरूपिणी एकरसता व्यवहार-जगत्में 'राम'— सर्वव्यापी चेतनाके रूपमें अवतरित होती है।

यथा—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज भगत प्रेम बस कौसल्या के गोद॥

जिस प्रकार ज्ञान और अज्ञान, प्रकाश और अन्धकार सापेक्ष हैं, उसी प्रकार निर्गुण (Unmanifest) और सगुण (manifest) परब्रह्म और राम सापेक्ष हैं—

एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥

× × × ×

अगुन अलेप अमान एक रस। राम सगुन भए भगत प्रेम बस॥

× × × ×

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

रामको प्राप्त करनेका एक ही उपाय है—'विशुद्ध प्रेम'— रामहि केवल प्रेम पियारा, और रामको प्राप्त करनेका अर्थ है रामके स्तरकी चेतनामें अवगाहन, किंवा स्वयं राम-रूपको प्राप्त हो जाना। 'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई' का यही तात्पर्य है।

तुलसीके राम विश्वके कण-कणमें व्याप्त एकरस-जीवन हैं। उनके चरित्र-चित्रणका मूलाधार यही सर्वग्राही सत्य है। मारीच-जैसे कपटी एवं समस्त प्रपञ्च एवं विपत्तिके मूल कारणके प्रति रामका व्यवहार देखिये—

प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥

समस्त छल-छिद्रका त्याग होते ही विशुद्ध प्रेमका संचार हो उठा। एकरसताकी प्राप्ति उसका अनुसारी परिणाम होना ही चाहिये था—

अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

यहाँतक कि असत्य रूप रावणकी चेतना जिस क्षण सत्यरूप रामकी ओर उन्मुख होती है, उसी क्षण उसका उद्धार हो जाता है—

गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ राम रन हतौं पचारी॥
तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥

महानताका संचार महानताका गुण भी है और लक्षण भी। महानतामें संक्रामकता होती है। उसके सम्पर्कमें आते ही 'लघुता' महत्ताकी ओर अग्रसर हो उठती है। लघुत्वका महत्त्वमें लय होना ही समस्त ज्ञान, योग, भक्ति एवं काव्यका चरम फल है। तुलसीके रामका बड़प्पन ऐसा ही है। उनके सम्पर्कमें आनेवाले भालु-कपितक अपने-आपको सर्व-सामर्थ्यवान् समझने लगे थे। रामके नामपर रावणकी सभामें अङ्गदका पैर जमा देना रामकी इसी महानताका परिचायक है। लक्ष्मणको शक्ति लगनेके अवसरपर हनुमान्‌ने भी यही कहा था—

जौं अब हौं अनुसासन पावौं।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल ज्यों, आनि सुधारस प्यावौं। (गीतावली)

विश्व-चेतनाके अवतार रामका शील भी सर्वथा स्पृहणीय था—

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सो संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

विज्ञ पाठक! 'सकुचि' शब्दकी महिमा समझेंगे तो ऋणत्रयीसे उऋण होनेके लिये आजन्म प्रयत्नवान् बने रहेंगे। रामके जगत्में वस्तुतः अपने-परायेकी भावना निर्मूल हो गयी थी। उनके लिये शत्रुभावकी स्थिति हो नहीं थी। रावणके पास दूतकाज-हित अंगदको भेजते समय रामने रावण-के हितकी ही कामना की थी—

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

भक्त विभीषणको उपदेश देते हुए रामने जिस धर्म-रथ-का निरूपण किया है, वह तो मानो इसी विश्व-व्यापी चेतना-का ही व्यावहारिक अथवा सगुण स्वरूप है। भगवान् अपना मत स्पष्ट प्रकट कर देते हैं—

सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

विश्व-व्यापी चेतना सर्वथा अभयरूप होती है; न तुम किसीके लिये भयका कारण बनो और न तुम किसीसे भय करो। रामका जीवन सर्वथा अभय ही था। यथा—

जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥

तथा—

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भईं रजनीचर धारी॥

भेद-भाव अथवा भेद-बुद्धिकी सीमाएँ देश (Space, matter) और काल (Time,mind) है—इन

सीमाओंसे परे रामकी चेतनाका निरूपण करनेके लिये इन सीमाओंसे मुक्त अनुभव और वाणी अपेक्षित है।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। और तुम्हहिको जाननिहारा॥

जबतक देश-कालकी सीमाएँ रहेंगी, तबतक तर्क-वितर्क स्थित रहेगा। बुद्धिके भेद अथवा संदेहके लिये स्थान रहेगा ही। संश्लिष्ट आत्माके अनुभवके लिये विश्लेषणहेतुक देश-कालका परित्याग अनिवार्य है। जबतक चेतनामें विश्लेषण हेतुक बुद्धि शेष है, तबतक अखण्ड सत्ताका परिज्ञान कैसा? यथा—

केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि समुझि मनहि मन रहिये॥

× × × ×

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै॥
(विनयपत्रिका)

ज्ञान, बुद्धि और क्रियाका सगुण-स्वरूप आत्मा, बुद्धि और मानस है। इन दोनो त्रिभुजोंका संतुलन संसारके सुख-शान्तिका हेतु है। शिवका ताण्डव इनके संतुलनका प्रतीक है। रामके जीवनमें पूर्ण संतुलन था। रामरूपी ज्ञान लक्ष्मण तथा तदनुसारिणी क्रियारूपी सीता एवं धर्मबुद्धि लक्ष्मणसे सदैव सम्पृक्त रहता है। योगेश्वर श्रीकृष्णरूपी ज्ञान और तदनुसारिणी क्रियारूपी धनुर्धर पार्थके प्रसङ्गमें भी गीताकारने विजय-भूतिकी चर्चा की है। परंतु तुलसीके राम-वाला प्रसंग कहीं अधिक सरस व्यावहारिक एवं ग्राह्य है।

यथा—

कीर के कागर ज्यों नृप चीर, बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मग-बास के रूख ज्यों, पंथ के साथ ज्यों लोग-लोगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाउ की नाईं॥
(कवितावली)

रामकी उक्त चेतनाका आभास जिसको प्राप्त हो गया, वह मानो कृतकृत्य हो गया—राम-रूप ही हो गया। गोस्वामी-जीके निम्नलिखित कथनपर इसी दृष्टिकोणसे विचार करना चाहिये—

जाकी कृपा लवलेस तें मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायौ परम बिश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥
(रामचरितमानस)

भगवान् रामने स्वयं अपने ही मुखसे कहा है कि जो एक बार इस धारामें पड़ जाता है, वह फिर पीछेकी ओर नहीं जाता है। देश-काल ही तो पाप-पुण्यकी सीमाएँ हैं।

जिसे असीमताका, महत्त्व-साक्षात्कारका सुख प्राप्त हो जाता, वह फिर ससीमताकी, लघुत्वकी कामना क्यों करने लगा? रामकी चेतनाका आनन्द मानो अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शीलके अनन्त महासागरके तटपर खड़े होकर उसकी अगणित लहरोंके अनिर्वचनीय आनन्द-का लाभ करना है। यथा—

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

मनकी ऐसी स्थितिका सबसे बड़ा प्रमाण है। चित्तका सुशीलताकी ओर आपसे-आप ढल जाना—

हौं अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परि है।
(विनयपत्रिका)

धर्माचरण-सम्बन्धी वह सूत्र—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

उक्त चेतना-प्रसूत ही समझना चाहिये। अन्तःकरणकी इस वृत्तिके लिये अहंकारका उन्मूलन अनिवार्य है, साधन और साध्यकी एकता अपेक्षित है—

यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई॥

चाह

मिलौ न चाहै तुम कबौं, करौ भले मति याद।
नित्य याद मोकूँ रहौ, छिन भर जाय न बाद॥
देउ दुःख मोकूँ अमित, करौं न कछु फरियाद।
बनी रहै मनमैं सदा तुम्हरी मीठी याद॥

संजयकी दृष्टि

[श्रीराधाकृष्ण]

गीतामें महाभारतका एक प्रसंग है। कहानी सबकी जानी-सुनी है। कौरवोंके पिता जन्मान्ध थे। उनमें देखनेकी शक्ति नहीं थी। फिर हस्तिनापुरमें बैठकर वे कुरुक्षेत्रमें होनेवाली घटनाओंको देख भी नहीं सकते थे। इसीलिये उन्होंने संजयसे पूछा।

और संजयमें वह शक्ति थी। जो दृश्य सामने न हो उसे भी वे देख सकते थे। वे देख सकते थे कि कहाँ क्या हो रहा है। मगर यह बात कुछ विचित्र-सी है। परोक्षकी घटनाएँ दिखलायी नहीं पड़तीं। इस बातको लेकर कोई भी पूछ सकता है कि 'क्यों महोदय! जो वस्तु सामने न हो, संजय उसे किस तरह देख सकते थे? इस तरह कोई देख नहीं सकता, फिर संजयकी आँखोंमें ही कौन-सी ऐसी खास बात थी कि वे देख पाते थे? इस बातपर एकाएक विश्वास करना कठिन है कि हस्तिनापुरमें बैठकर कोई कुरुक्षेत्रकी घटनाओं-को देख सकता हो।'

आदमी समझता है कि आँख देखती है; मगर देखने-वाली शक्ति कुछ दूसरी है। अक्सर ऐसा भी देखा गया है कि आदमीकी आँखोंके सामने तरह-तरहकी घटनाएँ हो रही हैं; परंतु उस ओर उसका ध्यान नहीं। वह उन घटनाओंको नहीं देख पाता। यद्यपि आँखें खुली हैं, सामनेका कोई भी दृश्य अगोचर नहीं, फिर भी वह सामनेकी घटनाओंको देख नहीं पाता। आदमी चिन्तामें चूर है, आँखें खुली हैं, मन इधर-से-उधर भटक रहा है—ऐसी अवस्थामें कोई उसके पास आता है और पूछता है कि अभी आपने अमुक व्यक्तिको इधरसे जाते हुए देखा है? मगर देखनेवाला तो अपनी चिन्ताओंमें खोया हुआ था। उसे पता भी नहीं कि अमुक व्यक्ति इधरसे गया भी या नहीं। इसका कारण क्या है? देखनेवाली शक्ति उसकी उस समय काम नहीं कर रही थी। खुली आँखोंसे देखता हुआ भी वह आदमी नहीं देख रहा था।

कलकत्ते और बंबईकी व्यस्त जिंदगी। चलते-फिरते आदमीकी आँखोंके सामने निरन्तर कितने दृश्य दिखलायी पड़ रहे हैं; लेकिन वह उन्हें नहीं देख पाता। अगर वह सामने-के दृश्योंको देखे तो बस उन्हीं दृश्योंमें उलझता-सुलझता रहे। अपना काम तो वह कदाचित् ही कर पायेगा। उसके सामने अपनी चिन्ताएँ हैं, अपना काम-धाम है, अपनी व्यतिव्यस्तिता है। वह सामनेके दृश्योंको, घटनाओंको देखता हुआ भी नहीं देख पाता। क्या उस समय उसकी आँखें काम नहीं करतीं? आँखोंकी क्रियाशीलता तो वही रहती है; किंतु उसकी देखनेवाली शक्तिकी क्रियाशीलता दूसरी ओर लगी रहती है।

मनुष्य देखता कैसे है? मनुष्यकी आँखकी काली पुतलियोंसे दृष्टिपटलतक पाँच लाख नन्हे-नन्हे तन्तु जाते हैं। आँखकी रेटिनापर सामनेके दृश्योंका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वह उल्टा पड़ता है। फिर भी हम हैं कि सामनेका दृश्य उल्टा नहीं, सीधा देखते हैं। उल्टी परछाँहीको हम किस प्रकार सीधा देख लेते हैं? आश्चर्यकी बात है कि हमें इसका अनुभव भी नहीं होता कि हमारी आँखोंमें सामनेके दृश्यकी उल्टी परछाई पड़ रही है। यह बिल्कुल मालूम ही नहीं होता कि जिस आदमीका सिर हम ऊपरकी ओर देख रहे हैं, उसका सिर अपनी आँखोंमें नीचेकी ओर है। इसीलिये मैंने कहा कि देखनेवाली चीज आँख नहीं, वह कोई दूसरी चीज है जो देखती है।

बहुत दिनोंकी बात है, एक बार मैं बीमार होकर गुमलामें पड़ा हुआ था। उन दिनों मेरे मनमें एक प्रश्न उमड़ आता था कि जो आदमी जन्मसे ही अन्धा है वह भला क्या सपना देखता होगा। अगर वह सपना देखता है तो क्या देखता है? उसके सपने किस तरहके होते हैं? अपनी इस जिज्ञासाकी तृप्तिके लिये मुझे दूर जानेकी जरूरत नहीं पड़ी। एक जन्मान्ध व्यक्ति उसी शहरमें रहता था। एक दिन वह मिला तो मैंने उससे पूछा—'क्यों जी, तुम भी कभी सपना देखते हो?'

उसने हँसकर जवाब दिया—'बस, कभी-कभी सपना ही तो देखता हूँ बाबू! सपनेके सिवा और क्या देख सकूँगा।'

मेरी उत्सुकता बढ़ गयी। पूछा—'सपनेमें तुम क्या देखते हो?'

कहने लगा कि मैं सपनेमें तालाब देखता हूँ जहाँ उजले, लाल और नीले कमल हैं। मैं चिड़ियोंको आते-जाते उड़ते और बोलते हुए देखता हूँ। तालाबसे लौटते हुए मुझे कुछ

रुपये मिल जाते हैं । कपड़ेकी एक पोटली मिलती है जिसमें गहने बँधे हुए हैं ।""""इस तरह वह कई सपनोंकी कितनी तरहकी कहानियाँ सुना गया ।

और मैं चक्करमें था, हक्का-बक्का होकर सोच रहा था कि इसने सपनेमें जो तालाब देखा वह कैसा तालाब था ? उजला-लाल और नीलकमल""""इस व्यक्तिके द्वारा देखा हुआ उजला-लाल और नीला कैसा है ? सपनेमें वह जिस कमलको देखता है, वह किस प्रकारका कमल है ? उसकी देखी हुई चिड़िया वास्तविक चिड़ियाके समान ही है या उससे भिन्न है ? उसने सपनेमें जो देखा उसका देखा हुआ वह रुपया कैसा है ? कपड़ेकी बँधी हुई वह पोटली—उसके भीतर बँधे हुए गहनोंकी शक्ल""""""वह सपनेमें कैसा देखता है ?

आँखें उसकी हैं नहीं, फिर भी वह सपने देखता है । जिनके पास आँखें हैं वे जब सपना देखते हैं तो उन्हीं चीजोंको देखते हैं जिन्हें वे अपनी आँखोंसे देख चुके हैं । अगर वह दूसरे किसकी कोई चीज देखता है, तो वह भी आँखोंसे देखी हुई चीजकी ही विकृति या रूपान्तरमात्र होती है । मगर जन्मान्धका स्वप्न """"दृष्टिशक्ति है ही नहीं, फिर भी वह सपने देखता है । जाग्रत्-अवस्थामें कुछ भी देख नहीं पाता, मगर सुषुप्तावस्थामें देखनेयोग्य सारी चीजोंको देखता है । मान लिया कि वह सपनेमें अपनी कल्पनाको देखता है; मगर देखता तो है । आँखें केवल माध्यम हैं जिनके द्वारा वह देखनेका काम लेता है । देखनेकी शक्ति कोई दूसरी होती है ।

आजके आधुनिक युगमें चीर-फाड़की इतनी वृद्धि हुई है कि पुरानी दुनिया इन थोड़े ही दिनोंमें कहाँ-से-कहाँ पहुँच चुकी । आज तो शरीरके रद्दी पुर्जे बदलकर नये लगाये जा रहे हैं । अमेरिकाके एक सर्जनने एक मरते हुए आदमीकी आँखें निकालकर एक जन्मके अन्धे व्यक्तिकी आँखके कोटरोंमें लगा दिया । अन्धा व्यक्ति देखने लगा । न्यूयार्कमें आँखोंका बैंक भी स्थापित हो गया है । वहाँ आँखके कोटरका पारदर्शक भाग 'कोर्निया' छः दिनोंतक सुरक्षित रखी जाती हैं । एयरटाइट बक्समें द्रवके अंदर कोर्निया रखी जाती है । स्वयं बक्स भी रेफ्रिजेटरके अंदर रखा जाता है, जिसमें रासायनिक द्रव ठंढा बना रहे । अनेक व्यक्तियोंकी दृष्टिशक्ति आँखकी कोर्नियामें चोट लगनेसे जाती रहती है । सर्जन इनकी आँखकी खराब कोर्नियाको ऑपरेशन करके बाहर निकाल देते हैं और उसकी जगहपर स्वस्थ आँखकी कोर्निया फिट कर देते हैं । इस तरह उनकी आँखोंकी देखनेकी शक्ति फिर लौट आती है । ऐसे-ऐसे भी दृष्टान्त हैं जिन्होंने अपनी आँखें खोकर बाईस वर्षोंके बाद फिरसे ऑपरेशनके द्वारा अपनी आँखें पायीं । मरनेके बाद चार घंटोंके अंदर-अंदर कोर्नियाको निकालकर रख देनेसे वह ठीक रहती है ।

पटना वीमेन्स ट्रेनिंग कालेजकी प्राध्यापिका कुमारी सरोज घानने एक दिन बातचीतके सिलसिलेमें मुझसे कहा था कि कभी-कभी मैं एक अन्धा-स्कूलमें जाया करती थी । पहले तो कुछ खास बात देखनेमें नहीं आयी; मगर कुछ दिनोंके बाद जब मैं अन्धी छात्राओंके बीच पहुँची, तब कोई लड़की बोल उठी—'लो, सरोजदीदी आ गयीं ।'

वे उन्हें किस तरह पहचान जाती थीं ?

सरोज घानने कहा था—एक दिन मैं अन्धी छात्राओंके बीच पहुँची तो मेरे साथ एक दूसरी महिला भी थीं । जब हमलोग पहुँचीं तो वे आपसमें बातें कर रही थीं—'एक तो सरोजदीदी हैं; मगर ये दूसरी कौन हैं ?'

एक लड़कीने कहा—'ये अमुक हैं ।'

दूसरी बोली—'ये अमुक तो कभी नहीं; दूसरी कोई हैं ।'

तबतक तीसरी बोल उठी—'अरी, ये अमुक हैं, अमुक ! ये बहुत कम आती हैं ।'

और उस लड़कीका अंदाज बिल्कुल ठीक था । आँख न होनेपर भी उन्हें आदमियोंके पहचाननेमें किसी तरहकी बाधा नहीं होती थी ।

जहाँतक मनुष्यकी दृष्टिशक्तिकी बात है, आदमीकी दृष्टिशक्ति बड़ी सीमित है । उसके पास केवल दो आँखें हैं और प्रत्येक आँखमें केवल एक ही लेन्स है । आँखके मामलेमें वह कीड़े-मकोड़ोंसे भी तुच्छ है । मधुमक्खीकी पाँच आँखें होती हैं और उन आँखोंमें ६,००० लेन्स होते हैं । अब आप मधुमक्खीकी आँखोंसे मनुष्यकी आँखोंकी तुलना कर लें । मैदेकी ढेरमें मैदाका एक कण देख सकना मनुष्यके सामर्थ्यके बाहर है; लेकिन मधुमक्खी उसे देख सकती है । नन्ही-नन्ही पत्तियोंमें जो रोमकूपके समान छेद होते हैं, उन्हें मधुमक्खी आसानीसे देखती है । किसी पेड़की डालीके ऊपर सूर्यकी सतरंगी किरणें किस तरह नाचती हैं यह दृश्य देख सकना मनुष्यके लिये जितना कठिन है, मधुमक्खीके लिये उतना ही आसान है । मधुमक्खी घंटेमें बीस मीलकी गतिसे उड़ सकती है । अगर मील दो मील दूर किसी पेड़की टहनीपर कोई कली

खिलती है, तो उसकी गन्ध भी उसे मालूम हो जाती है। वह जब चाहे, बिना बतलाये उस फूलके पास पहुँच सकती है। यही नहीं, दूर फूले हुए हजारों-लाखों फूलोंकी सुगन्धके बीच वह अपने इच्छानुसार केवल एक फूलकी सुगन्ध भी ग्रहण कर सकती है। मधुमक्खीकी इन शक्तियोंके आगे मनुष्यकी इन्द्रियोंकी शक्तिकी तुलना कीजिये।

वनस्पति-जगत्में देखिये। लोग उल्टा-सुल्टा बीज बोते हैं, मगर उपज सीधी होती है। लताकी आँखें नहीं होतीं; लेकिन लता सदा उसी ओर बढ़ती है जिस ओर उसे ऊपर उठ सकनेका सहारा मिलता है। पहाड़की दरारमें उगनेवाली वनस्पतियाँ उसी ओर अपनी डालियाँ फैलाती हैं जिस ओर कोई दूसरी दरार है और जहाँ बीज उगानेके लिये कुछ मिट्टी है। उसी दरारतक ये अपनी डालियोंको पहुँचाकर फूलती-फलती हैं और वहाँकी मिट्टीमें अपना बीज सौंपकर संसारसे चली जाती हैं। क्या यह कम आश्चर्यकी बात है? आँखें तो उन्हें होतीं ही नहीं; फिर वे अपना देखनेका सारा कार्य किस तरह सम्पन्न कर लेती हैं? आँख नहीं होनेपर भी देखनेका उनका सारा आवश्यक व्यापार चलता रहता है। केंचुआकी आँखें होतीं ही नहीं; मगर वे सदा वहीं पायी जाती हैं जहाँ उनकी आवश्यकता है, जहाँका स्थान उनके अनुकूल है। केंचुआ बिना आँखके किस तरह अपने उपयुक्त स्थानकी तलाश कर लेती हैं? आँख नहीं होनेपर भी देखनेकी क्रिया चल सकती है और आँख होनेपर देखनेका काम नहीं हो सकता। साँपकी आँखोंके ऊपर पलकें नहीं होतीं। जब वह आराम करता है, कहा जाता है कि साँप सोता नहीं, आराम करनेके लिये निश्चेष्ट होकर पड़ा रहता है, तब भी उसकी आँखें खुली रहती हैं और उन खुली आँखोंसे भी वह कुछ देख नहीं पाता।

कई वर्ष बीते। पलामू जिलेका एक उराँव-परिवार आकर हमारे पड़ोसमें रहता था। उराँव लोकगीतोंके विषयमें उन लोगोंके साथ मेरी बातचीत हुआ करती थी। एक दिन किसी बातचीतके सिलसिलेमें उसने बतलाया कि जब वह अपने गाँवमें था, कई वर्ष पहले, एक रात एकाएक उसकी नींद उचट गयी और उसे मालूम हुआ कि कुछ लोग चुपके-से आकर उसके खेतकी फसल काट रहे हैं। वह घबरा गया और अपने भाइयोंको जगाने लगा। अपने भाइयोंको साथ लेकर हथियारोंसे सुसजित जब वह खेतपर पहुँचा तो पाया कि उसकी आशङ्का ठीक थी। चाँदनी रातमें उसने देखा कि कुछ लोग उसके खेतमें झुके हुए हैं और फसल काटते जा रहे हैं। वे रातोंरात आकर चुपकेसे उसकी फसल उड़ा देना चाहते थे। इसने जोरसे ललकारा, तो चोर भयभीत होकर भाग निकले और उसकी फसल बच गयी।

जहाँतक इस उराँवका प्रश्न है, इसने सपना भी नहीं देखा था। सहसा उसकी नींद चटक गयी और उसने अनुभव किया कि उसके खेतमें फसलकी चोरी हो रही है। इतना ही नहीं, उसने दृढ़ विश्वासके साथ अपने भाइयोंको जगाया, हथियार आदि लिये और तब खेतपर पहुँचा। वहाँ वही बात थी। उसकी आशंका ठीक निकली। उसने चोरोंको चोरी करते हुए सपनेमें भी नहीं देखा था, फिर कौन-सी शक्ति थी जो चोरोंको देख रही थी?

बहुत दिन पहले हिंदीके अमर कहानीकार स्वर्गीय विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' एक मासिकपत्र निकालते थे। उसका नाम था 'मनोरंजन'। उसमें यूरोपकी किसी दम्पतिकी दृष्टिशक्तिके विषयमें एक विचित्र वृत्तान्त छपा था। पति और पत्नीमें प्रगाढ़ प्रेम था। पति चाहे कहीं भी हो, पत्नी बतला सकती थी कि वह कहाँ है, किन लोगोंसे बातें कर रहा है, क्या काम कर रहा है। मनोवैज्ञानिक हैरान थे और किसी तरह भी उसकी पत्नीकी इस शक्तिका अंदाज नहीं कर पाते थे। वैज्ञानिकोंने चाहा कि पतिको किसी दूर देशमें भेजकर इस बातकी परीक्षा करें कि उस समय भी पत्नी अपने पतिकी सारी बातें जान पाती है या नहीं। परंतु पत्नी राजी नहीं हुई। उसका विश्वास था कि दूर जानेसे वह अपनी इस शक्तिको ही नहीं खोयेगी, बल्कि अपने पतिको भी खो बैठेगी। वैज्ञानिकोंने बतलाया था कि परोक्षमें गये हुए अपने पतिके बारेमें वह जो बतलाती है वह बिल्कुल सही है। यह दूर परोक्षमें देख सकनेका उदाहरण है या नहीं?

कदाचित् सन् ४६ की बात है। मेरे बड़े लड़के समरकुमारको लीवरका ऐसा रोग हो गया था कि डाक्टर यदुगोपाल मुकर्जी-जैसे महान् चिकित्सकने भी जवाब दे दिया। उनका कहना था कि रोग बहुत अधिक बढ़ गया है और इस अवस्थामें एलोपैथी दवा कारगर नहीं हो सकती। इसलिये जी चाहे होमियोपैथी कराओ, आयुर्वेदकी शरण लो, यूनानी दवा दो; मगर एलोपैथीके भरोसे न रहो।

यह एक किससे जवाब था। मेरा मन निराशासे भर आया। शामको टहलने निकला तो पं० भवभूति मिश्रसे भेंट

हो गयी। मेरी परेशानीकी बात सुनकर बोले कि 'डोमचाँचके परमहंस बाबा आये हुए हैं। उन्हींके दर्शनोंके लिये जा रहा हूँ। आप भी चलिये।'

मैं गया। इससे भी पहले एक-दो बार उनका दर्शन पा चुका था। निर्विकार चेहरा। आँखोंमें गहरे अनुरागकी छाया। उस समय वे अपने अन्य भक्तोंसे बातें कर रहे थे। मैं चुपचाप एक ओर बैठ गया। अवसरकी ताकमें था कि मौका मिले तो अपनी बात उठाऊँ। सहसा उनकी दृष्टि मेरी ओर फिरी। मुझे देखते ही वे बोल उठे—'अरे बैठा-बैठा तू इतनी चिन्ता क्यों कर रहा है? जाकर बकरीके दूधमें गोमूत्र मिलाकर पिला दे। थोड़े ही दिनोंमें बच्चा ठीक हो जायगा।'

मैंने उनसे कुछ कहा नहीं, पूछा नहीं। उनके सामने केवल मेरा शरीर था; लेकिन उन्होंने मेरे मनमें उठनेवाले विचारोंको पूरी तरह पढ़ लिया। यही नहीं, उन्होंने मेरे लड़केकी अवस्था भी देख ली और उसका निदान भी बतला दिया। यह कैसे हो गया?

उस लड़केको दवा दी गयी और वह ठीक हो गया। डाक्टर आये। देखा तो ताज्जुबसे भर उठे। यह क्या जादू हो गया? मैंने सारी बातें बतलायीं तो बोले—'साधुने जो दवा बतलायी थी सो बड़ी पक्की दवा थी। हार्टको ठीक रखनेके लिये बकरीका दूध और लीवर काटनेके लिये गोमूत्र!'

संसारमें न जाने कितनी आश्चर्यकी बातें हो जाती हैं; लेकिन मनुष्य ठीकसे उनकी ओर ध्यान नहीं देता। मेरे एक मित्र हैं ईश्वरीप्रसाद सिंह। उन्होंने अपना एक अनुभव बतलाया। कहने लगे कि 'एक गाँवमें जाना था; लेकिन जंगलमें रास्ता भटक गया था। कहीं कोई आदमी भी नहीं कि उससे पूछूँ कि अमुक गाँव किधर है। मटमैली साँझ घिर आयी थी। उसके पीछे-पीछे रात आ रही थी। चारों ओर झींगुरोंका शोर। आखिर उन्होंने अपने-आपको यों ही रामभरोसे छोड़ दिया। सोचा कि चलते हुए जिस-किसी भी गाँवमें पहुँचेंगे, टिक जायँगे। मगर कहीं भी गाँवका नाम-निशान, लता-पता नहीं। रात चली आ रही थी, चारों ओर धुंध-सा हो रहा था, जब वे थकावटसे बिल्कुल चूर हो गये, तब ठीक उसी समय उन्हें एक गाँव मिला। अब चाहे कोई भी गाँव हो!—उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि एक आदमी आता हुआ दिखलायी पड़ा।

ईश्वरीबाबूने उत्सुक होकर उससे पूछा—'अमुक गाँव किधर है?'

उस व्यक्तिने जवाब दिया—'अमुक गाँव तो यही है।'

ईश्वरीप्रसादने उल्लसित होकर पूछा—'.........सिंह-को जानते हैं?'

जवाब मिला '......सिंह तो मैं ही हूँ!'

कितने आश्चर्यकी बात है? उस जंगलमें भटकते हुए ईश्वरीप्रसादको उस गाँवकी राह कौन बतला रहा था? उनके पैर उसी ओर क्यों जा रहे थे जिस ओर वह गाँव था?

इस बातको आप चाहे संयोग कहें, अन्तःप्रेरणा कहें, अन्तर्दृष्टि कहें, जो कहें; मगर इतना तो अवश्य कहेंगे कि आँखके ऊपरकी भी कोई शक्ति है। वह शक्ति अनजानी जगहमें भी राह बतलाती है। जो नहीं देख पाया है, उसे भी दिखला देती है। आजके इस अविश्वासी युगमें विज्ञान और तर्कके नामपर बातको टाल दिया जाता है। कहा जाता है कि संयोग है, आश्चर्य है, झूठ है; परंतु जरा गहराईमें डूबकर विचार करनेके लिये किसीके पास समय नहीं है। महात्माओंके जीवनमें अन्तर्दृष्टिके देखे जानेके न जाने कितने वृत्तान्त मिलते हैं। जब प्रभु ईसा अन्तिम बार यरुसलेम जा रहे थे तो बहुत थक चुके थे। उन्होंने अपने दो शिष्योंको बुलाया और बोले—'सामनेके गाँवमें चले जाओ। वहाँ तुम्हें एक गदही बँधी हुई मिलेगी। पास ही उसका बच्चा होगा। उस गदहीको खोलकर लेते आओ। अगर कोई रोके तो कह देना कि प्रभुको इसकी जरूरत है।'

ईसामसीहने उस गदहीको किस तरह देख लिया, जो सामनेके गाँवमें दूरपर थी? ईसाके शिष्य उसे नहीं देख पाते थे; मगर ईसा उसे देख रहे थे।

तो इस बातको मान लेनेमें हर्ज क्या है कि संजयकी दृष्टिशक्ति विस्तृत थी। वे परोक्षमें होनेवाली घटनाओंको भी भलीभाँति देख सकते थे।

१९२६ की २५ जनवरीका दिन विज्ञानके इतिहासमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उस दिन रॉयल-इन्स्टीच्यूटके सदस्योंके सामने जान-बेयर्डने पहली बार टेलिविजनका सफल प्रयोग किया था। आज अमेरिका, इंगलैंड आदि पाश्चात्त्य देशोंमें टेलिविजन जनताकी चीज हो चुकी है। वहाँ टेलिविजनकी आवश्यकता प्रतिदिनकी अनिवार्य आवश्यकताओंमें गिनी जाती है। टेलिविजनके द्वारा आज हम दूरकी चीजोंको देखनेमें समर्थ हैं। आजका मनुष्य यह जाननेमें भी समर्थ है कि धरतीके नीचे कहाँ किस चीजकी खान दबी पड़ी है, कहाँ तेलका सोता जमीनके नीचे बह रहा है।

आजसे तीन सौ साल पहले स्वीडनके वैज्ञानिकोंने सबसे पहले लोहेकी खानोंका पता लेनेके लिये चुम्बकीय सूईका प्रयोग किया था। अब तो इस प्रकारके यन्त्रोंका विकास बहुत दूर-तक हो चुका है। आजके युगमें इन्फ्रा-रेड और अल्ट्रा-वायलेट रश्मियोंके द्वारा लिये गये फोटोग्राफ आश्चर्यकी चीज नहीं रहे। एक्स-रे फोटोके बारेमें आज सभी जानते हैं। इनकी बात सुनकर आश्चर्यसे चौंकनेवाला आदमी भी नहीं दिखलायी देता। अब इन चीजोंमें विशेषता रही ही नहीं।

फिर भी आप कह सकते हैं कि यह गङ्गाकी गैलमें मदारके गीतकी बात है। कहाँकी बात थी और क्या बातें होने लगीं। जहाँ आँखोंसे देखनेवाली लैंसकी बात है, वहाँ कैमराके लैंसकी बात चलायी जा रही है। सिस्मोग्राफ आदि यन्त्रोंके द्वारा खान-पेट्रोल आदिका पता जरूर लग जाता है; लेकिन वे आँख नहीं, यन्त्र हैं। फिर टेलिविजनके द्वारा हम दूर-परोक्षकी चीजें भी जरूर देख लेते हैं; लेकिन हम उसे अपनी इच्छाके अनुसार नहीं देखते, बल्कि हमें वे ही सारी चीजें देखनी पड़ती हैं, जो हमें दिखलायी जाती हैं। मुख्य बात तो है अपने इच्छानुसार परोक्षकी बातें देखनेकी।

आपकी बात ठीक है। इसके लिये विशेष प्रकारकी दृष्टि चाहिये। विशेष प्रकारसे देखनेके लिये विशेष प्रकारकी दृष्टिकी आवश्यकता पड़ती है। जब भगवान्‌ने अर्जुनको अपना विराट्-रूप दिखलाया, तब उन्होंने अर्जुनको विशेष प्रकारकी दृष्टि भी दी थी। उस विशेष दृष्टिके बिना भगवान्‌के उस विराट् रूपको देख सकना सम्भव नहीं था। यों जलको देखनेपर उसमें कुछ भी नहीं मालूम होता; लेकिन एक बूँद जलको अगर आप अणुवीक्षण यन्त्रके सहारे अपनी आँखमें विशेषता प्राप्त करके देखें तो उसमें न मालूम कितने कीड़े चलते-फिरते दिखलायी देंगे।

दृष्टिशक्तिकी वैज्ञानिकता प्राप्त हो जाय तो दूर-परोक्षकी घटनाएँ इच्छानुसार देखी जा सकती हैं। पुरातन कालमें विज्ञान और अध्यात्मको अलग-अलग करके देखा नहीं जाता था। यूरोपमें दर्शनशास्त्रसे विज्ञानका पार्थक्य आज बहुत पुरानी घटना नहीं कही जायगी। पहले लोग किसी चीजको अध्यात्मकी दृष्टिसे परखते थे। अर्थात् स्थूलको सूक्ष्मसे देखते थे। आज सूक्ष्मको स्थूलसे जाँचनेकी पद्धति चल पड़ी है। हर चीजके लिये विज्ञानका नाम लिया जाता है। उस समय लोग भूल जाते हैं कि सर ओलिवर लाज आदि अनेक संसारप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर्वदा यह स्वीकार करते रहे कि विज्ञान ही अन्तिम वस्तु नहीं। उसके ऊपर भी बहुत-सारी चीजें हैं, जहाँ तर्क काम नहीं करता।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्य अपनी आँखोंके द्वारा नहीं, बुद्धिके द्वारा देखता है। बुद्धिका आवास मस्तिष्कमें माना जाता है। वैज्ञानिक डा० टिल्नेका कहना है कि मनुष्यका मस्तिष्क निरन्तर विकास करता जा रहा है। इससे मनुष्यके सिरकी आकृतिमें भी अन्तर पड़ रहा है।

मनुष्यके मस्तिष्ककी अगाध शक्तियोंका पूरा पता अभी-तक वैज्ञानिकोंको नहीं है। वजनमें वह मानव-मस्तिष्क लगभग डेढ़ सेरका होता है। उसके भीतर छोटे-छोटे 'सेल' हैं। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि एक मनुष्यके मस्तिष्कमें लगभग १ नील [१, ००, ००, ००, ००, ००, ०००] सेल होते हैं। यों ये सेल असंख्य हैं। इनके भीतर विद्युत्का प्रवाह है। उसी विद्युत्प्रवाहके द्वारा मनुष्य सोचता-विचारता और अनुभव करता है। मनुष्य-मस्तिष्कके ये 'सेल' ही सब कुछ हैं।

अमेरिकामें 'मौन्ट्रील न्यूरोलोजिकल इन्स्टीच्यूट' के डा० पेनफील्ड मस्तिष्कका ऑपरेशन करके मिर्गी रोगकी चिकित्सा करते हैं। इसकी जाँचके समय वहाँ इलेक्ट्रोडसे मस्तिष्कके 'सेल' में बिजलीका प्रवाह दिया जाता है। इस प्रयोगसे अजीब-अजीब तरहके तथ्य सामने आये। किसी 'सेल' में अगर इलेक्ट्रोडसे बिजलीका प्रवाह दिया जाय तो पैर आप-से-आप उछल जाते हैं। कहीं इलेक्ट्रोड देनेसे आँखकी पलकोंमें संचालन होने लगता है। स्पष्टतः उन सेलोंके द्वारा उन अङ्गोंका नियन्त्रण होता है। दक्षिण अफ्रिकाके एक युवकको जब इलेक्ट्रोड दिया गया तो उसने पाया कि वह अपने घरमें परिवारके बीच उपस्थित है। वहाँ पियानो बज रहा है और उसका चचेरा भाई मजेदार गप्प सुना रहा है। उसने कहा—'इस दृश्यको मैं सोचता नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। सब कुछ मेरे सामने इसी कमरेमें घटित हो रहा है। मैं जानता हूँ कि मैं मौन्ट्रीलमें हूँ; मगर मुझे लगता है कि मैं अपने परिवारमें आ गया। वहाँ-का सारा दृश्य मेरे सामने है। मैं वहाँके लोगोंको देख रहा हूँ, उनकी बातें सुन रहा हूँ।'

वैज्ञानिक कहते हैं कि इस तरह जो दृश्य देखे जाते हैं, वे पहलेके देखे हुए दृश्य होते हैं। सम्भव है, परंतु यह भी हो सकता है कि मस्तिष्कमें वे शक्तियाँ भी वहींपर उपस्थित हों, जिनके द्वारा मनुष्य वर्तमानमें होनेवाली परोक्षकी सारी घटनाएँ देख-सुन सकता है। अभी तो विज्ञान मनुष्यकी शक्तियोंके बारेमें क-ख सीख रहा है।

मुझे ऐसा मित्र चाहिये !

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

मित्रोंकी एक छोटी गोष्ठी है और उसमें इस बार यही चर्चाका विषय रखा गया है। मैं सोचने लगा हूँ, यह कहना सत्य नहीं होगा। बहुत पहिले, वर्षों पहिले सोच लिया है मैंने कि मुझे ऐसा मित्र चाहिये—

जो असमर्थ न हो, परंतु असमर्थ-सहायक हो।

जो दीन न हो, किंतु दीनबन्धु बननेमें जिसे हर्ष होता हो।

जो अशरण-असहाय न हो, किंतु अशरण-शरण हो सके और असहायकी सहायता कर सके।

सौ बातकी एक बात—मुझे सम्पूर्ण समर्थ, भरपूर सम्पन्न और पूरा उदार मित्र चाहिये।

बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। मित्रताकी बात यहाँसे तो प्रारम्भ होती है। अतः मुझे ऐसा मित्र चाहिये—

जिसे दोष देखना आता ही न हो; किंतु गुण और सौहार्द देखनेमें जिसकी दृष्टि सूक्ष्मदर्शक हो।

जिसे सम्मान अपेक्षित न हो, पर मित्रका मान रखनेमें जो सदा आगे रहा आवे।

जिसे स्वकी पूर्ति संकीर्ण न करे, किंतु सुहृद्‌के उत्कर्षकी जिसे सदा चिन्ता रहती हो।

बात यहाँ भी समाप्त नहीं होती। आप जानते ही हैं कि मैत्री किसी सीमाको स्वीकार नहीं करती। अतएव मुझे ऐसा मित्र चाहिये—

जो रूठै पर रूसे कभी नहीं।

जो झगड़े पर लड़े कभी नहीं।

जो भागे पर त्यागे कभी नहीं।

अभी और भी बात है। आप ऊबते हों तो फिर कर चुके आप मैत्री। मुझे ऐसा मित्र चाहिये—

एक लाख बड़ी-से-बड़ी भूलें कर लूँ और जिससे कह दूँ—तुम हो किस लिये ? तुम सुधारो इनको और जिसके भालपर रेखा नहीं, अधरोंपर स्मित आवे। जो कह सके, ठीक, मैं यहाँ भी तुम्हारे साथ हूँ।

एक करोड़ कामनाएँ पाल लूँ और जिसके आगे कह दूँ—तुम किस रोगकी दवा हो ? सुलझाओ इस जालको और जिसके मुखपर चिन्ता नहीं, हास्य आवे। जो कह सके ठीक, मैं हूँ न तुम्हारे साथ।

एक अरब अपराध जिसके कर डालूँ और बिना हिचके जिसको कह सकूँ—यह सब मैंने कर दिया, अब ? और जिसके नेत्रोंमें लाली नहीं, अधरोंपर उल्लास थिरक उठे। जो कह सके—भैया ! मैं तेरा हूँ न।

अच्छा अब थोड़ी-सी बात और। बहुत सीधी भाषामें। मुझे ऐसा मित्र चाहिये—

जिससे सब कुछ पूछा जा सके।

जिससे सब कुछ कहा जा सके।

जिससे सब कुछ लिया जा सके।

सम्भवतः आप सोचने लगे हैं कि मैं असम्भव माँगें रखने लगा हूँ। इस प्रकारका मित्र भी कहीं किसीको मिल सकता है। किंतु अभी मेरी बात पूरी आपने सुनी नहीं। मैं ऐसा मित्र चाहता हूँ, जिसमें ऊपरकी सब बातें हों—९९ नये पैसे नहीं, १०१ नये पैसे और इतनेपर भी—

जो केवल इच्छा करनेसे—चाहनेसे मिल सके। मुझे ऐसा एक मित्र मिला है। आप भी उसे अपना मित्र बनाना चाहते हैं ?

हिचकिये मत—मित्रताकी झोली असीम है। यहाँ संख्या-वृद्धि उल्लासका हेतु बनती है। मैं झोली फैलाये हूँ। है आपमेंसे कोई मेरा मित्र बननेको प्रस्तुत ? मेरे मित्रको ही मित्र बनानेको प्रस्तुत हैं आप ?

आपमें मेरे सीधे मित्र बननेका दम-खम हो बड़े हर्षकी बात। मेरे मित्रको मित्र बनाना हो तो उसकी एक शर्त है—मित्रताकी माँग आपकी सच्ची है या नहीं ? बहुत सीधी रीतिसे तब मुझे आपसे पूछना है—

१–आपके जीवनकी सबसे बड़ी माँग क्या है ?

२–ऐसा क्या है जिसके लिये आप अपना सब कुछ दे सकते हैं—सर्वस्वकी आहुति ?

३–आप अपनी पारमार्थिक परिगति कैसी चाहते हैं ?

कुछ सेवा-रसिक हैं संसारमें। उन्हें सेव्यकी सेवा चाहिये शाश्वतकालके लिये। वे कृतार्थ होंगे, यदि उन्हें आराध्यका सेवकत्व प्राप्त हो जाय।

कुछ स्नेहप्राण सुजन हैं। वात्सल्य है उनके तन-मनमें घुला-मिला। वे देना चाहते हैं—केवल देना। सर्वेशको भी उन्हें अपना स्नेह देना है।

कुछ रसिकहृदय हैं और उन्हें भी देना ही देना है। परम वन्दनीय हैं वे। श्रुति जिसे 'रसो वै सः' कहती है, उसे भी उनके रसका लुब्ध होना ही पड़ता है।

मैं इन सब सम्मान्य जनोंका पादाभिवन्दन करता हूँ। किंतु आपसे सच बात कह दूँ—पूजना और पुजना दोनों अप्रिय हैं मुझे। मुझे लेना भी है और देना भी। मुझे तो ऐसा मित्र चाहिये—

जिसके जीवनकी सबसे बड़ी माँग मैत्री हो।

जो मैत्रीके लिये अपने सर्वस्वकी आहुति दे सके।

अपनी परम परिगति भी जिसे मैत्री ही वाञ्छनीय लगे।

यदि आप ऐसे हैं—अवश्य आपको मैं बता दूँगा अपने उस मित्रका नाम और आप मेरे उस मित्र सुहृदोंमें सम्मिलित हो सकेंगे।

मानव सुखी कैसे हो ?

मैं संध्याके सुहावने समयमें चंदनीपर टहल रही थी। एक ओर मोर नाच रहा था, दूसरी ओर कबूतरोंका जोड़ा केलि कर रहा था। कुछ दूरीपर दो-चार मनुष्य लड़ रहे थे। बुरी तरह गाली-गलौज कर रहे थे। अहा, क्या शान्तिमय जीवन है इन पक्षियोंका ! क्या मनुष्य इनसे भी गये-बीते हो गये हैं ? क्या मनुष्यके भाग्यमें शान्ति-सुख लिखे ही नहीं हैं ? आखिर यह मानव कैसे दानव बन गया ? प्रभुने तो इसे भेजा था दानवतापर विजय पानेको और हुआ इसके सर्वथा विपरीत। मनुष्य यदि क्रोधको जीत ले तो फिर दानवताको कुचलकर मानव बन जाय। यदि हम अहंकार और क्षुद्र स्वार्थको नष्ट कर दें तो अवश्य विश्व-बन्धु बन जायँ, यदि हम कामनाका त्याग कर दें तो हम पूर्ण सुख-शान्तिसम्पन्न हो जायँ। हमें किसी कमीका तनिक भी अनुभव न हो और रात-दिनकी चिन्तासे सर्वथा छुटकारा हो जाय। और यदि हम सबसे प्यारी, सुन्दर और पूर्ण सुखसे भरी हुई उस अन्तरतम वस्तुको देख लें, समझ लें, पहिचान लें, जिससे दृश्य-अदृश्य सभी आलोकित हैं, तब तो परम पूर्ण ही हो जायँ। फिर काम-वासनाके लिये स्थान ही कहाँ रहे ? यदि हम अन्तरसे एक-एक दानवको भी निकालनेकी कोशिश करें तो हम अवश्य धीरे-धीरे सफल हो जायँ इन दानवको मार भगानेमें और शान्तिपूर्ण सुखी मानव बन जायँ।

—दुर्गेश

मेरा 'अहं' बोलता है

[मद, कारण और निवारण]

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

(३)

किसीको अपने सदाचारका मद होता है, चरित्रका मद होता है, सद्गुणोंका मद होता है, कष्टसहन और तितिक्षाका मद होता है। किसीको सेवा और त्यागका मद होता है, किसीको अपनी धार्मिकताका मद होता है, आध्यात्मिकताका मद होता है।

ये वस्तुएँ अपनेमें अच्छी हैं, बहुत अच्छी हैं— पर अहंकार इनका भी अच्छा नहीं। मद इनका भी बुरा है। मद आया कि इनका सारा महत्त्व नष्ट हुआ।

किसीको यदि किसी साधनसे कोई सिद्धि मिल जाती है, मुँहसे निकली कोई बात पूरी हो जाती है, दिया हुआ शाप या वरदान कहीं पूरा पड़ जाता है, अथवा ऐसी ही कोई अलौकिक बात दिखायी पड़ जाती है तो उसके अहंकारका ठिकाना नहीं रहता। अणिमा, गरिमा, लघिमा-जैसी कोई सिद्धि हाथ लगी कि मनुष्य उसके मदमें चूर हो उठता है।

पर ये सिद्धियाँ तो ऊपर नहीं उठातीं, नीचे ही गिराती हैं। पतञ्जलि भगवान् तभी तो कहते हैं—

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।
(पातञ्जलयोगदर्शन ३। ३७)

साधकके लिये वे विघ्न ही हैं।

× × ×

यों हम देखते हैं कि मद जगह-जगहसे घुस आता है। वह किसीमें किसी रास्तेसे घुसता है, किसीमें किसी रास्तेसे।

सेठजीको इसी बातका मद है कि उनके पास पैसे-का ढेर लगा है तो उस कल्लू बसियारेको इसी बातका मद है कि बच्चोंकी एक पलटन उसके घरमें सुबहसे शामतक चौकड़ी भरा करती है, उनके पालन-पोषणके लिये पैसा नहीं है तो क्या !

किसीको बाह्य वस्तुओंका—धन-सम्पत्तिका, वैभव-का, पद और प्रतिष्ठाका मद है तो किसीको आभ्यन्तरिक गुणोंका—आचारका, चरित्रका, सेवाका, त्यागका मद है। किसीका मद किसी रूपमें व्यक्त होता है, किसी-का किसी रूपमें। कोई भिखारीको ताँबेके दो टुकड़े देकर अपने दरवाजेपर बैठकर उसका डंका पीटता है तो कोई किसी संस्थाको हजार-पाँच सौ रुपये देकर अपने नामका पत्थर लगवाकर खुश होता है।

× × ×

साधनाकालमें रामकृष्ण परमहंस रातके समय अँधेरे जंगलमें चले जाते।

कई दिन देखा तो हृदय (उनका भानजा) उनके पीछे लगा।

पर जंगलकी स्थिति, निबिड़ अन्धकार, अनजाना पथ देख उसकी हिम्मत न पड़ी पीछा करनेकी। पर एक दिन साहस करके वह पीछे लग ही तो गया।

जाकर देखा कि रामकृष्णदेव सर्वथा नग्न होकर समाधिमें लीन हैं।

कपड़े ही नहीं, जनेऊ भी उन्होंने उतारकर नीचे रख दिया है।

समाधिसे उठे तो उन्होंने कपड़े भी पहन लिये, जनेऊ भी।

हृदयने पूछा—'मामा ! ऐसा क्यों करते हैं ?'

बोले—'परमात्माका चिन्तन सारे बन्धनोंको त्याग-कर ही करना चाहिये। आठ प्रकारके बन्धन जन्मसे ही जीवको पकड़े रहते हैं—

घृणा, लज्जा, कुलाभिमान, विद्याभिमान, जात्यभिमान, भय, ख्याति और अहंकार।

मैं उच्च कुलका हूँ, मैं विद्वान् हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं अमुक हूँ, मैं अमुक हूँ—ऐसे नाना प्रकारके अहंकारोंके रहते माँकी साधना नहीं हो सकती। इन सबको त्याग करके ही साधनमार्गमें प्रवृत्त हुआ जा सकता है।'

घृणा लज्जा भयं शोको जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं च जातिश्चेत्यष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः॥

× × ×

स्वामी शिवानन्दने अहंकारके नौ प्रकार बताये हैं—

(१) शारीरिक—बलशाली होनेसे
Physical pride

(२) बुद्धिगत—बुद्धिमान् होनेसे
Intellectual pride

(३) नीतिगत—सदाचारी होनेसे
Moral pride

(४) योगजनित—ऋद्धि-सिद्धि मिलनेसे
Psychic pride

(५) आत्मिक—आध्यात्मिकता होनेसे
Spiritual pride

(६) कुलाभिमान—उत्तम कुलमें जन्म होनेसे
Pride of noble birth

(७) सम्पदाभिमान—धन-जन होनेसे
Pride of possessions

(८) स्वरूपाभिमान—सुन्दर रूप होनेसे
Pride of being handsome

(९) राजमदाभिमान—राजसम्पदा होनेसे
Pride of kingly possessions

× × ×

यों नाना प्रकारके मद हमें सताया करते हैं।

बड़े-बड़ोंको ये मिट्टीमें मिला देते हैं।

बात है रामकृष्णदेव और तोतापुरीकी—

एक दिन बगीचेका एक आदमी उनकी धूनीसे आग लेने लगा—चिलम पीनेको।

तोतापुरी बिगड़े। चिमटा लेकर उसे रपेटने लगे।

रामकृष्ण परमहंस हँस पड़े।

तोतापुरी बोले—'तू हँसता क्यों है?'

रामकृष्णने कहा—इसीलिये गुरुजी! कि अभी पलभर पहले तो आप कहते थे कि ब्रह्म ही सत्य है और सारा जगत् उसका रूप है और पलभरमें ही आप सब भूल-कर उस आदमीको मारने दौड़ पड़े!

लाजसे कटकर रह गये तोतापुरीजी!

× × ×

तो यह 'अहं' यह मद, यह अहंकार बड़ा जबर्दस्त है। जहाँ रत्तीभर चूके, पलभरके लिये असावधान हुए कि इसने धर दबाया।

सवाल है कि अहंकारका पूर्णतः उन्मूलन तो तभी सम्भव है जब शरीर गिर जाय! शरीर रहते ऐसा कैसे हो?

उपाय उसका भी है जिससे न साँप मरे, न लाठी टूटे!

वह कैसे?

साँपके दाँत तोड़ दीजिये।

शरीर रहते ही निरहंकारिताकी ऐसी साधना कीजिये कि ये मद आपपर हमला ही न कर सकें।

रामकृष्णदेव कहते हैं—

'रस्सी जल जाती है, पर उसकी ऐंठ बनी रहती है, किंतु जलनेके बाद वह बाँधनेका काम नहीं दे सकती। यही बात महात्माओंके अहंकारकी भी है।'

ठीक यही बात रमण महर्षि कहते हैं—

"This ego is harmless, it is like the skeleton of a burnt rope. Though it has a form, it is no use to tie anything with."

निर्बीज समाधि और क्या है ?

× × ×

बाह्याभिमान, इन्द्रियाभिमान, शरीराभिमान—सबका कारण है—'अहं'। जबतक मनुष्यमें यह अहं रहता है तभीतक मनुष्य नाना प्रकारके छल-छन्द करता रहता है। एक-एक वस्तुका अहंकार हमारी नस-नसमें घुसा बैठा रहता है। मौका मिला नहीं कि वह फुफकारकर बाहर आया नहीं।

इस 'अहं'से छुटकारा पानेके लिये सतत साधना करते रहना होगा—दिन-रात, सुबह-शाम।

× × ×

आँखोंपर जब मदका चश्मा चढ़ा रहता है, तब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूपको भूल जाता है। उसके नशेमें वह इतना चूर रहता है कि उसे यह भी होश नहीं रहता कि वह कह क्या रहा है, कर क्या रहा है, सोच क्या रहा है ?

मन, वचन, कर्म—सबपर उसकी छाप पड़ी रहती है। पर जब हम इस चश्मेको उतारकर पलभरके लिये भी सोचने बैठते हैं, तब खटसे पता चल जाता है कि हम कहाँसे कहाँ चले गये थे !

बेटा है, बेटी है—करने दीजिये उन्हें शरारत, फिर देखिये माँ कैसे उनकी खबर लेती है !

क्यों ?

'मेरा' बेटा है, 'मेरी' बेटी है ! उसकी शरारतके साथ 'मैं' जुड़ी हूँ। लोग कहेंगे कि यह उसके बेटी-बेटेकी करतूत है। मैं कैसे बर्दाश्त करूँ यह लाञ्छन ? बच्चोंको मेरे आदेशके अनुसार, मेरे आदर्शके अनुसार चलना ही होगा।

× × ×

यही हाल पतिका है, पत्नीका है, स्वामीका है, नौकरका है। सबको अपना-अपना घमंड है। किसीको किसी बातका है, किसीको किसीका। मौका हाथ लगने भरकी देर है—फिर देखिये एक-एकके अहंकारके करिश्मे !

× × ×

करोड़पतिका जब दिवाला निकलता है, कोमलाङ्गीके अङ्ग-अङ्गसे जब कोढ़ टपकने लगता है, अफसर जब नौकरीसे बर्खास्त कर दिया जाता है, पहलवान जब चारपाई पकड़ता है, विद्वान्को जब भीख माँगनी पड़ती है, स्त्री जब दूसरेके साथ भाग जाती है, इन्द्रियाँ जब जवाब दे देती हैं, ऐश्वर्य जब मिट्टीमें मिल जाता है, ऊँची कुर्सी जब जबरन् छीन ली जाती है, कुल, शील, मान जब खतरेमें पड़ जाता है, तब लोगोंका यह मद कुछ कम होता है। फिर भी वह अपनी कुछ-न-कुछ गन्ध तो छोड़ ही जाता है !

× × ×

कहते हैं कि औरंगजेबने जब बापको जेलमें डाल दिया, तब बूढ़े शाहजहाँने उससे प्रार्थना की कि 'बेटा ! इस तनहाईमें मेरे पास कोई काम तो है नहीं। अच्छा हो तो कुछ बच्चोंको मेरे पास भेज दिया कर। मैं उन्हें पढ़ा दूँगा। काम भी होगा, मेरा जी भी बहलेगा।'

औरंगजेबने जवाब दिया—"हैं, जेलमें रहकर भी बादशाहतका घमंड न छूटा ! कुछ नहीं तो बच्चोंपर अपनी हुकूमत चलाना चाहता है। तेरी ऐसी कोई माँग मंजूर नहीं की जायगी।'

श्रीशैव संतोंकी कथाएँ या बृहद्पुराण

(लेखक—श्रीसु० कण्णनजी)

'तमिळ' वाङ्मयमें बृहद्पुराणका विशिष्ट स्थान है। उसे एक महाकाव्य कहें तो अत्युक्ति नहीं। शेक्किळार बृहद्-पुराणके रचयिता हैं। आप चोळ राजा कुलोत्तुङ्ग द्वितीयके समकालीन थे। मद्रासके पास कुन्ड्रतूर ही शेक्किळारका जन्मस्थान है। वे चोळ राजाके अमात्य थे। साहित्यप्रेमी एवं शिवभक्त चोळ राजाने शैव संतोंके वृत्तोंको काव्यरूप देना चाहा। उसके इच्छानुसार 'श्रीसेवकपुराण' या बृहद्-पुराणकी रचना करने लगे श्रीशेक्किळार! उन्हें देवारम-(शैवोंके ग्रन्थ) के गीतोंमें गहन ज्ञान और तमिळ देशोंके गाँवोंका परिचय होनेके कारण, यह काम आसान था। इस काव्यको चिदंबरम्के मन्दिरमें भगवान् नटराजके समक्ष लोक-मुक्तिके इच्छुकोंके लिये उद्घाटन किया।

तमिळसाहित्यमें शैव-संतोंकी कथाएँ सुन्दरमूर्ति नायनार-के 'तिरुत्तॉण्डतॉगै' और नंबियाण्डार नंबिके 'शिवसेवक-अंतादि'में हैं। इन दोनोंका बृहद्रूप ही 'बृहद्पुराण' है। जैसे वैष्णवोंके लिये 'आळवार' हैं, वैसे ही शैवोंके लिये 'जायन्मार' पूजनीय हैं। मद्रासके मैलाप्पूरमें इनका उत्सव प्रतिवर्ष धूमधामसे मनाया जाता है। बृहद्पुराणसे शैव धर्मका पुनर्जागरण हुआ। शैव धर्मका एक मूलग्रन्थ बृहद्पुराण है।

चिदंबरम्के त्रिसहस्र ब्राह्मण

जब श्रीसुन्दरमूर्ति नायनारने शैव संतोंकी कथाएँ गानेका श्रीगणेश किया, तब स्वयं भगवान् शिवकी वाणीसे 'चिदंबरम्के ब्राह्मणोंके दास-का-दास' पहली पंक्तिकी प्रेरणा मिली। शिवसे भी प्रशंसनीय ब्राह्मणोंकी महत्ता! चिदंबरम्के तीन हजार ब्राह्मण थे। श्रीनटराजकी पूजा ही उनकी तपस्या थी। वही उनका पुरुषार्थ था। वेदागमके ज्ञाता अपने आचार एवं शीलतासे भूषित होकर वेदाङ्गके दिग्गजोंको श्रीनटराजकी सेवा ही सर्वस्व थी। लोग भगवान्की पूजासे ही मुक्ति पाना चाहते हैं; किंतु चिदंबरम्के ब्राह्मणोंको भगवान्की सेवा ही परम सुख एवं सौभाग्य था।

विश्वमें शिवके एक हजार आठ मन्दिर हैं। पर उन सबसे श्रेष्ठ चिदंबरम् ही है। उस प्रख्यात मन्दिरके भगवान्का स्पर्शसुख पानेका सौभाग्य पानेवाले ब्राह्मणोंकी महत्ताको मैं एक अबोध किन शब्दोंसे कहूँ? मैं उनके समक्ष एक श्वानसे नीचे हूँ!

इन्हिवर् पत्तमै अम्माल् इयंबलाम् अल्लैत्तामो? तन्ड्रमिळ पगनायुळळ तिरुत्ताण्डत्तांगै मुन पाड अन्ड्रुवन् ताण्डर तम्मै अरुळिय आरूर् अण्णल् मुन् तिरु वाक्काल् कोत्तमुदपारुक आनार अन्ड्राल्।

(तामिल कविताका तात्पर्य—)

जब सुन्दरमूर्ति स्वामीजी अपने गीतोंको गानेवाले थे, तब स्वयं शिव भगवान्ने अपनी वाणीद्वारा शैव संतोंके प्रथम रूपमें ब्राह्मणोंका गान किया, अतः उनके यशकी सीमा ही क्या है?

तिरुनीलकंठ नायनार्

चिदंबरम्में शैव संतोंपर असीम भक्ति करके जीवन चलानेवाले तिरुनीलकण्ठ नायनार् थे। शैव संतोंके भिक्षा लेकर खानेके पात्र खप्परोंको बनाकर उनको देनेकी सेवा करते थे। भगवान् देवोंको अमृत पिलानेके लिये स्वयं काल-कूट ग्रहण करनेकी दयाको याद करके बार-बार उनके कण्ठ-की स्तुति करते-करते प्यारसे 'तिरुनीलकंठम्' का स्मरण करते थे। एक दिनकी बात है—घोर वर्षा हो रही थी। भक्त मन्दिरसे घर आ रहे थे। बरसातसे बचनेके लिये एक घरमें रुके। वह एक वेश्याका घर था। वेश्या स्वामीजीको देखकर प्रफुल्लित हुई। भगवान्के दासका आगमन उसके लिये परम-कल्याणकारी था। उसने स्वागत-सत्कार किया। वर्षा कम होते ही घर आये। उन्हें देखते ही पत्नीने बुरा मान लिया। उनपर क्रुद्ध होकर उसने शपथ खाकर कहा—'मैं नीलकण्ठम्-के नामपर शपथ लेकर कहती हूँ कि तुम मुझे मत छुओ।' पत्नीके द्वारा सदा स्मरण करनेवाले 'तिरुनीलकण्ठम्' पर शपथ खानेके कारण उनके दिलपर चोट लगी। वे बोले—'आजसे तुझे ही नहीं, वरं 'हमें न छूओ' कहनेसे स्त्री जाति-की किसीका भी स्पर्श नहीं करूँगा।' ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा करके उन्होंने कामका सर्वथा त्याग कर दिया। गृहस्थाश्रमके सभी धर्म निर्विघ्न चलने लगे। पर भोग-लिप्सा तिलमात्र भी नहीं थी, यद्यपि यह बात बाह्य जगत्में अज्ञात थी। उम्र बढ़ने लगी।

भगवान् शिवने उनके बड़प्पनको बाह्यजगत्में प्रकट करनेके लिये एक शैव संतका वेष धारण किया। अपने एक खप्परके साथ वे तिरुनीलकण्ठके पास आये। भक्तने उनका

स्वागत करके आदर-सत्कार किया और पूछा—'क्या सेवा करूँ ?'

संतरूपी शिवने अपना खप्पर दिखाकर कहा कि 'यह त्रैलोक्यमें भी नहीं मिल सकता और आप अपने पास इसे सावधानीसे रखें। बादको जब मैं आकर माँगूँ, तब दे दें।' नायनार्‌ने मान लिया, संतने बिदा ली। कुछ दिनों बाद भगवान् शिवने उस खप्परको आँखोंसे ओझल कर दिया। फिर एक दिन आये। नीलकण्ठसे खप्पर माँगा। भक्तने सब जगह ढूँढ़ा। पर नहीं मिला। उन्होंने भारी चिन्ताके साथ शिवके पास आकर कहा—'वह तो मिल नहीं रहा है। क्षमा करें। मैं दूसरा उससे बढ़िया दूँगा।' पर शिवने न माना। उन्होंने जोरसे चिल्लाकर कहा—'मैंने पहले ही कहा था। मुझे तो वही चाहिये।' नीलकण्ठको कुछ भी नहीं सूझा। उन्होंने रो-रोकर विनती की—'यह मेरा कसूर नहीं। मैं बहुत सतर्क रहा। पर यह भगवान्‌की परीक्षा है। मुझे क्षमा कीजिये।' शिवने पूछा—'तो तुम यह शपथ खाओ कि मैंने उसको नहीं लिया।' नायनार् तैयार हो गये। संत-वेषधारी शिवने कहा कि 'वे अपने बेटेका हाथ पकड़कर शपथ खायें'। नायनार्‌के बेटा नहीं था। इससे शिवने कहा कि 'अपनी पत्नी-का हाथ पकड़कर शपथ खाओ।'

अब नायनार दुविधामें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि क्या कह दूँ कि मैं अपनी पत्नीका स्पर्श नहीं कर सकता। अन्त-में उन्होंने कहा 'मैं ऐसा नहीं कर सकता।' शिवने कहा—'तुमने जान-बूझकर ही मेरे खप्परको छिपा दिया है; इसीसे कहते हो कि शपथ नहीं करूँगा। मैं चिदंबरम्‌के तीन सहस्र विप्रोंके समक्ष इस अन्यायकी शिकायत करूँगा।' भगवान् नायनार्‌को ब्राह्मणोंकी सभामें ले गये। उनसे सारी बातें कहीं। नायनार्‌ने भी अपनी विवशता बतायी।

ब्राह्मणोंका न्याय था कि 'वे अपनी पत्नीके हाथ पकड़कर पानीमें डूबकर शपथ करें।' नायनार्‌ने अपने व्रतका विवरण दिया और असीम दुःखित होकर नायनार् श्रीव्याघ्रेश्वर (तिरुप्पुलीश्वर) के पुण्यतीर्थमें एक बाँसकी लकड़ीके छोरको अपनी पत्नीसे पकड़नेके लिये कहकर पानीमें डूबनेवाले ही थे कि वेदस्वरूपी भगवान्‌ने उन्हें रोककर कहा कि 'हाथ पकड़कर डूबनेसे ही विश्वास करूँगा।' ऐसी दशामें विवश होकर तिरुनीलकण्ठम्‌का स्मरण करते-करते व्रतके भङ्ग होनेके क्षोभसे डूबने लगे। किंतु आश्चर्य! ऊपर उठते ही उनका यौवन-पूर्ण रूप देखकर सब दाँतोंतले उँगली दबाने लगे। संतरूपी लीलाविनोदी परमशिवने अपना रूप बदलकर वृषभारूढ़ होकर अद्वितीय दर्शन दिया। चिरकालतक पति-पत्नी शिव एवं शैव संतोंकी सेवा करते-करते भगवान्‌की ज्योतिमें समा गये।

बाँसुरी सुनाइ दे

जग जाल ज्वालन सों जरत बिकल प्रान,
स्रौन-राह सरस बिलेपन लगाइ दे।
'राजहंस' भ्रमत मरीचिका में मनमृग,
तान सो सुनाइ नीके ठौर बिरमाइ दे॥
रस बरसाइ दे, बढ़ाइ दे अमंद मोद,
हीय की रुखाई नाथ! धोय कै बहाइ दे।
एक बेर, एक बेर, केवल सु एक बेर,
एक बेर स्याम! वैसी बाँसुरी सुनाइ दे॥

—बलदेवप्रसाद मिश्र

मिथ्याभिमान

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'अहं करोमीति वृथाभिमानः ।'

'बाबू ! एक गम्भीर रोगी है ।' होम्योपैथिक डाक्टर शिर्केने कहा । 'सिविल सर्जन बुलाया गया है । तुम्हारे वैद्यराज भी हैं और अब मुझे भी फोन आया है; आओ, साथ चलो ।'

उन दिनों मैं एक बड़े नगरमें रहता था । आयुर्वेदमें निसर्गतः अभिरुचि है और होम्योपैथी अपने अत्यधिक सस्तेपनके कारण आकृष्ट करती है । चिकित्सा मेरा कभी व्यवसाय नहीं रहा, कभी बनानेकी इच्छा भी नहीं; किंतु वह एक व्यसन तो पता नहीं कबका बन चुका है ।

उन दिनों होम्योपैथी सीखनेकी धुन थी । एक दवाइयोंका छोटा बक्स मँगा लिया था और कुछ पुस्तकें । केवल पुस्तकोंको पढ़ लेनेसे चिकित्सा आ जायगी, यह विश्वास मुझे रहा नहीं । अतः डा० शिर्केके समीप जाकर एक घंटे प्रतिदिन बैठने लगा था ।

मेरी अभिरुचिने डाक्टरको आकृष्ट किया । वे मुझसे स्नेह करने लगे और यथासम्भव अपनी व्यस्ततामें भी कुछ-न-कुछ बताने लगे । रोगियोंको सम्मुख रखकर उनका यह बताना कितना प्रभावकारी था, कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

मुझसे डाक्टरको कोई संकोच होनेका कारण नहीं था । वे जानते थे, मैं चिकित्साको व्यवसाय बनाकर उनका प्रतिस्पर्धी नहीं बनने जा रहा हूँ ।

वह पहिला दिन था, जब चिकित्सालयसे बाहर रोगीके समीप जाते हुए डाक्टरने मुझसे साथ चलनेको कहा था । अपनी मोटरमें वे ड्राइवरके स्थानपर बैठ गये और जब मैं उनका चिकित्सा-बक्स लेकर बैठा, सहकारीको साथ ले जाना अनावश्यक हो गया ।

× × × ×

'मौतकी औषध धन्वन्तरिके समीप भी नहीं, डाक्टर साहब !' नगरके उन सम्भ्रान्त सज्जनके बँगलेमें हमारी मोटर रुकी और उतरते ही सबसे प्रथम वैद्यराजजी मिले । वे रोगीको देखकर लौट रहे थे । 'जिसे मैं अच्छा नहीं कर सका, उसे अबतक तो कोई अच्छा कर नहीं सका है । जाइये, आप भी देख लीजिये । सिविल सर्जन आपको भीतर ही मिलेगा ।'

वैद्यराजजी नगरमें मेरे पड़ोसी हैं । मुझपर उनकी प्रभूत कृपा है । अपनी चिकित्साके चमत्कार वे प्रायः मुझे सुनाया करते हैं । मेरी उनपर श्रद्धा है और देशमें जो आयुर्वेदके गिने-चुने प्रकाण्ड विद्वान् हैं, उनमें उनकी गणना होती है । अपने अनुभव एवं नैपुण्यपर उनका गर्व उचित ही है ।

'आप दस मिनट रुकें तो साथ ही चलेंगे ।' मैंने वैद्यराजजीसे सहज भावसे प्रार्थना की । 'यहाँसे मैं सीधे अपने यहाँ ही चलना चाहता हूँ ।'

'अच्छा, मैं रुकता हूँ । तुम हो आओ ।' वैद्यराजजीने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली ।

'होपलेस, डाक्टर साहब !' रोगीके कक्षके द्वारके बाहर ही हमें सिविल सर्जन मिले । उन्होंने डाक्टर शिर्केसे हाथ मिलाया और बोले—'कोई आशा नहीं ।'

स्वभावतः डाक्टर शिर्के निराश हो गये । मैं भला, किस गणनामें आता था ? किंतु यहाँतक आ गये थे तो रोगीको देखे बिना लौट जाना उचित नहीं था ।

'आप देरसे आये !' रोगीके पिताने कोई उत्साह नहीं व्यक्त किया ।

'कृपा करके आप सिविल सर्जनको दस मिनट रोकिये !' रोगीके मुखपर दृष्टि पड़ते ही मुझे सहसा भरोसा हो गया—हम देरसे नहीं आये । 'निराश होनेका कोई कारण नहीं ।'

डाक्टर शिर्केने आश्चर्यसे मेरी ओर देखा । रोगीके वे सम्भ्रान्त पिता—डूबतेको जैसे तिनकेका सहारा मिला । उनके नेत्रोंमें कृतज्ञता उमड़ पड़ी और अनेक स्वजनों एवं सेवकोंके होते भी स्वयं उठे सिविल सर्जनको रोकने ।

'मैं आज ही कैण्टकी मैटीरिया मेडिकाका अध्याय पढ़कर आया हूँ ।' मैंने संकेत किया और डाक्टर शिर्के मेरी ओर झुके तो मैंने उनके कानमें फुसफुसाते हुए कहा—'सब लक्षण पूरे मिलते हैं । आप आज चमत्कार दिखा सकेंगे ।'

डाक्टर शिर्के विश्वस्त नहीं हुए; किंतु मैंने औषधका नाम बताया और आग्रह किया—'जब कोई चिकित्सक दवा नहीं दे रहा है, आप भी इन्हें निराश कर दें—यह क्या उचित होगा ?'

मेरा अनुरोध मान लिया गया। दवाकी एक बूँद जलमें डालकर पिला दी गयी और मैंने सदाकी भाँति आवश्यकतासे बहुत अधिक अपनेपर भरोसा करके रोगीके पितासे आग्रह किया—'आप किसी भी प्रकार सिविलसर्जनको एक बार और रोगीकी परीक्षाके लिये यहाँ ले आयें।'

सिविल सर्जनको ले आनेमें अधिक कठिनाई नहीं हुई। वे रुक गये थे और कहते ही रोगीके कक्षमें चले आये। किंतु उनके आनेतक दवाकी पहिली मात्रा दिये पाँच मिनट बीत चुके थे और जब वे कक्षमें आये, मैं दूसरी मात्रा दे रहा था। रोगीकी बेचैनीमें स्पष्ट अन्तर इतनी ही देरमें देखा जा सकता था।

सिविल सर्जनने बेमनसे हृदय-परीक्षण प्रारम्भ किया; किंतु क्षणभरमें ही वे गम्भीर हो गये। उन्होंने बहुत एकाग्रता-पूर्वक हृदय, फेफड़े आदिका परीक्षण किया और कई-कई बार किया। अन्तमें वे उठे और डाक्टर शिर्केकी ओर मुड़े—'धन्यवाद डाक्टर! आप निश्चय सफल हुए। रोगी तेजीसे खतरेके बाहर जा रहा है।' मुक्तकण्ठसे उन्होंने स्वीकार किया।

सिविल सर्जन साहबको अब रुकनेके लिये नहीं कहना पड़ा। उनके परीक्षणमें पाँच मिनट और लग चुके थे और औषधकी तीसरी मात्रा भी रोगीको दे दी गयी थी।

'अब आप कृपा करके एक बार वैद्यराजजीको भी बुला लें।' मैंने आग्रह किया। 'वे मेरे अनुरोधपर बाहर रुके हैं।'

रोगीको अब बेचैनी नहीं रही थी। अब मेरी बात बिना सोचें-समझे मान ली जाय, ऐसी परिस्थिति बन चुकी थी। वैद्यराजजी आये और उन्होंने नाड़ी देखी, उन्होंने भी स्वीकार किया—'आज मैं मानता हूँ, डाक्टर शिर्के, कि आपने मृत्युको भी अँगूठा दिखानेमें सफलता पायी है।'

'मैंने कुछ नहीं किया है।' डाक्टर शिर्केने मेरी ओर देखा। 'मैं भी आप सबके समान सर्वथा निराश हो चुका था और लौटनेवाला था; किंतु·········।'

'रोगीका प्रारब्ध उसकी रक्षा करनेको उद्यत था।' बात गलत स्थानपर समाप्त होने जा रही थी, इसलिये मुझे बीचमें बोलना पड़ा। 'भगवान्‌की कृपा! वे परमप्रभु जिसे रखना चाहते हैं, उसे मार देनेकी शक्ति तो यमराजमें भी सम्भव नहीं है।'

× × × ×

'तुम इतने निपुण चिकित्सक हो!' हम जब लौटे, तब मार्गमें मेरे पास बैठे वैद्यराजजीने मुझसे कहा। 'किंतु तुमने मुझे गन्धतक नहीं लगने दी कि तुम चिकित्साशास्त्रसे भी परिचय रखते हो।'

डाक्टर शिर्के मुझे और वैद्यराजजीको भी अपनी मोटर-में लिये जा रहे थे। मैंने कहा तो था कि ताँगा करके मैं चला जाता हूँ; किंतु उनका आग्रह था कि वे मुझे अपने यहाँ छोड़कर तब चिकित्सालय जायँगे।

'मैं अभी पंद्रह दिनसे होम्योपैथी सीखने लगा हूँ।' मैंने कहा। 'यह तो संयोग था कि सुयश मुझे प्राप्त होना था। चिकित्साका अधिष्ठान रोगी अनुकूल स्थितिमें था, कर्ता चिकित्सककी सूझ-बूझ ठीक थी; औषधका चुनाव उचित हुआ और ठीक ढंगसे वह निर्मित थी, उसे देनेकी पद्धतिमें भी कोई भूल नहीं हुई और सबसे बड़ी बात कि रोगीका प्रारब्ध अनुकूल था। इनमेंसे एक भी बात यदि ठीक न होती, चिकित्सक क्या कर लेता।'

'अच्छा, तो तुम अपनी दार्शनिकतापर आ गये हो।' वैद्यजी किंचित् मुसकराये।

'दार्शनिकताकी तो यहाँ कोई बात नहीं है।' मैं कह रहा था। 'सभी विषयोंमें सफलता इन सब संयोगोंपर ही निर्भर हुआ करती है। 'मैंने किया' यह अभिमान तो मनुष्यका व्यर्थ ही है।'

'कहते तुम ठीक हो!' वैद्यजीने अनुमोदन किया और स्वयं गीताके श्लोक उनके मुखसे निकलने लगे—

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥
शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः॥
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥

श्रीश्रीराधा-महिमा

(श्रीराधाष्टमी-महामहोत्सवपर गोरखपुरमें हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन)

नमस्ते श्रियै राधिकायै परायै
नमस्ते नमस्ते मुकुन्दप्रियायै ।
सदानन्दरूपे प्रसीद त्वमन्तः-
प्रकाशे स्फुरन्ती मुकुन्देन सार्धम् ॥
सदा राधिकानाम जिह्वाग्रतः स्यात्
सदा राधिकारूपमक्ष्यग्र आस्ताम् ।
श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तःस्वभावे
गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे ॥

(श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्र)

साधन-जगत्में प्रधानतया उत्तरोत्तर विलक्षण चार राज्य हैं—१. कर्मराज्य, २. भावराज्य, ३. ज्ञानराज्य और ४. महान् परम भावराज्य । इसीके अनुसार साधकोंके स्वरूप हैं, साध्य-स्वरूप हैं और दिव्य लोकादि हैं । कर्मप्रवण पुरुष कर्मराज्यमें श्रौतस्मार्त वैध कर्मोंके द्वारा कर्म-साधन करते हैं । सकामभाव होनेपर वे स्वर्गादि पुनरावर्ती लोकोंमें जाते हैं और सर्वथा कामनारहित होनेपर 'नैष्कर्म्यसिद्धि' को प्राप्त होते हैं । इनके तत्त्वज्ञानकी स्थितिमें लोककी कल्पना नहीं है और कर्मतत्त्वकी दृष्टिसे सृजन-पालन-संहार करनेवाले सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता ईश्वरके सांनिध्यमें इनका कर्मजगत्में कार्य चलता रहता है । इनमें कोई-कोई साधक सिद्धि प्राप्त करके ब्रह्माके पदतक पहुँच जाते हैं और मूल परम तत्त्वके अंशावतार विभिन्न ब्रह्माण्डाधिपति सृजनकर्त्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा संहारकर्ता रुद्रोंमें कहीं 'ब्रह्मा' का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं ।

इससे उच्चतर या आगे 'भावराज्य' है, वहाँ कर्मके साथ केवल निष्काम भावकी प्रधानता न होकर ईश्वर-प्रीतिसाधक भक्तिकी प्रधानता होती है । भावुक पुरुष इस भावराज्यके क्षेत्रमें भावसाधनाके द्वारा अपने भावानुरूप इष्टदेव परमैश्वर्य-सम्पन्न, स्वशक्तियुक्त भगवत्स्वरूपोंके सांनिध्य और उनके दिव्य लोकोंको प्राप्त करते हैं । इनकी साधनाका फल दिव्य भगवल्लोकोंकी प्राप्ति है । ये भी सर्वथा मायामुक्त होते हैं ।

इससे आगे ज्ञानराज्य है । इसमें विचार-प्रधान पुरुष साधन-चतुष्टयादिके द्वारा महावाक्योंका अनुसरण करके विशुद्ध आत्मस्वरूपमें परिनिष्ठित होते हैं । इनके प्राणोंका उत्क्रमण नहीं होता । ये ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं या ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त करते हैं ।

इससे आगे एक महाभावरूप 'भगवद्भाव-राज्य' है । भुक्ति-मुक्ति, कर्म-ज्ञान आदिकी वासनासे शून्य पुरुष ही इस परम 'भावराज्य' के अधिकारी होते हैं । उपर्युक्त तत्त्वज्ञानी मुक्त पुरुषोंमें भी किन्हीं-किन्हींमें भगवत्प्रेमाङ्कुरका उदय हो जाता है, जिससे वे दिव्य शरीरके द्वारा उपर्युक्त कर्म-भाव-ज्ञान-राज्यसे अतीत भगवद्भाव-राज्यमें प्रवेश करके प्रियतम भगवान्के साथ लीलाविहार करते हैं या उनकी लीलामें सहायक-सेवक होकर उनके सुखमें ही अपने भिन्न स्वरूपको विसर्जितकर नित्य-सेवा-रत रहते हैं; परंतु भोग-मोक्षकी कामना-गन्ध-लेशसे शून्य, सर्वात्मनिवेदनकारी महानुभावोंका ही इसमें प्रवेश होता है, चाहे वे पवित्र त्यागमय प्रेमस्रोतमें बहते हुए सीधे ही यहाँ पहुँच जायँ अथवा उपर्युक्त ज्ञान-राज्यमें ज्ञान प्राप्त होनेके अनन्तर किसी महान् कारणसे इस सर्वविलक्षण महाभावरूप परम दुर्लभ राज्यमें प्रवेश प्राप्त करें ।

इस भावराज्यमें नित्य निरन्तर भावमय सच्चिदानन्दघन दिव्य प्रेमरसस्वरूप श्रीराधाकृष्णका भावमय नित्य लीला-विहार होता रहता है । गोपीप्रेमकी उच्च स्थितिपर पहुँचे हुए गोपीहृदय महापुरुष तथा श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा नित्यसिद्धा तथा विविध साधनोंद्वारा यहाँतक पहुँची हुई अन्यान्य गोपाङ्गनाओंका उसमें नित्य सेवा-सहयोग रहता है । इसीको 'गो-लोक' या 'नित्य प्रेमधाम' भी कहते हैं । यह 'भावराज्य' ज्ञानराज्यसे आगेका या उससे उच्च स्तरपर स्थित है । प्रेमी महानुभावोंने तो भगवत्कृपासे, 'स्वयं भगवान्' श्रीकृष्णके द्वारा सखा भक्त अर्जुनके प्रति उपदिष्ट गीतामें भी इसके संकेत प्राप्त किये हैं । कुछ उदाहरण देखिये—तेरहवें अध्यायमें भगवान्ने क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, ज्ञान-ज्ञेयके स्वरूपका वर्णन किया । उसमें सर्वत्र व्याप्त सगुण निराकार तथा ज्ञानगम्य ब्रह्मस्वरूपका उपदेश करनेके बाद वे कहते हैं—

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥

(१३ । १८)

"इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय संक्षेपमें कहे गये । इन

क्षेत्र-ज्ञान-ज्ञेयको जानकर मेरा भक्त 'मेरे भाव' को प्राप्त होता है।"

चतुर्थ अध्यायमें भगवान् कहते हैं—

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥
(४।१०)

"बहुत-से राग-भय-क्रोधसे रहित, ज्ञानरूप तपसे पवित्र, मुझमें तन्मय, मेरे आश्रित पुरुष 'मेरे भाव' को प्राप्त हो चुके हैं।"

अठारहवें अध्यायमें स्पष्ट शब्दोंमें भगवान्ने कहा है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥
(१८।५४-५५)

'ब्रह्मभूत होकर प्रसन्नात्मा पुरुष न तो शोक करता है न आकाङ्क्षा करता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होकर शोक-कामनासे रहित प्रसन्नात्मा—आनन्दस्वरूप हो जाता है तथा सब भूतोंमें सम हो जाता है; तब वह मेरी पराभक्तिको प्राप्त करता है। उस भक्तिसे यानी परा ज्ञाननिष्ठासे जैसा जो कुछ मैं हूँ, उस मुझको तत्त्वसे जानकर तदनन्तर मुझमें प्रवेश कर जाता है।' अभिप्राय यह कि ब्रह्मस्वरूप समदर्शी शोकाकाङ्क्षारहित उच्च स्थितिपर पहुँच जानेपर भी भगवान्के 'यः यावान्' स्वरूपका ज्ञान और उस भावराज्यमें प्रवेश शेष रह जाता है, जो पराभक्ति—प्रेमाभक्तिसे ही सिद्ध होता है।

इस पराभक्तिसे भगवान्के जिस स्वरूपका ज्ञान होकर जिस भावराज्यकी लीलामें प्रवेश प्राप्त होता है, भगवान्का वह स्वरूप भी अद्वय अक्षर ज्ञानतत्त्व ब्रह्मसे (तत्त्वतः एक होनेपर भी) असाधारण विलक्षण है। इसका भी संकेत गीताकी भगवद्वाणीमें स्पष्ट है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥
(७।३)

'सहस्रों मनुष्योंमें कोई एक सिद्धिके लिये—तत्त्वज्ञानके लिये प्रयत्न करता है। उन यत्न करते हुए सिद्ध—सिद्धिप्राप्त पुरुषोंमें कोई एक मुझको तत्त्वसे जानता है।' यहाँके 'तत्त्वतः वेत्ति' से उपर्युक्त 'तत्त्वतः अभिजानाति' का और यहाँके 'सिद्ध'से उपर्युक्त श्लोकके 'ब्रह्मभूत' का सर्वथा साम्य है। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानतत्त्व ब्रह्मकी अपेक्षा 'माम्' शब्दके वाच्य भगवान् विलक्षण हैं।

पंद्रहवें अध्यायमें दो प्रकारके पुरुषोंका वर्णन करते हुए भगवान् अपनेको 'क्षर' पुरुषसे अतीत और 'अक्षर' पुरुषसे उत्तम 'पुरुषोत्तम' बताते हैं और इसे 'गुह्यतम' कहते हैं। 'अक्षर' क्या है, यह भगवान्के शब्दोंसे ही स्पष्ट है—'अक्षरं ब्रह्म परमम्' (८।३)—परम ब्रह्म अक्षर है।

इससे भी अत्यन्त स्पष्ट भगवान्की उक्ति है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥
(१४।२७)

'अव्यय ब्रह्म, अमृत, नित्य धर्म और ऐकान्तिक सुख—(ये चारो ही ब्रह्मके वाचक हैं) की मैं ही प्रतिष्ठा हूँ।'

इससे सिद्ध है कि ज्ञानराज्यसे यह महा'भावराज्य' विलक्षण है और ज्ञानगम्य ज्ञानतत्त्व 'ब्रह्म' से भगवान् 'श्रीकृष्ण' विलक्षण हैं।

ज्ञानतत्त्वमें परिनिष्ठित ब्रह्मीभूत महात्मा, जिनकी अज्ञान-ग्रन्थि टूट चुकी है, ऐसे आत्माराम मुनि भी भगवान्की अहैतुकी भक्ति करनेको बाध्य होते हैं; क्योंकि भगवान्में ऐसे ही विलक्षण स्वरूपभूत गुण हैं—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥
(श्रीमद्भागवत १।७।१०)

इसीसे भगवान् श्रीकृष्णका एक सुन्दर नाम है—'आत्मारामगणाकर्षी' 'आत्माराम मुनिगणोंको आकर्षित करनेवाले'।

कुन्तीदेवीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥
(श्रीमद्भागवत १।८।२०)

'आप अमलात्मा—विशुद्धहृदय परमहंस मुनियोंको भक्तियोग प्रदान करनेके लिये प्रकट हुए हैं। फिर हम अल्पज्ञ स्त्रियाँ आपको कैसे जान सकती हैं।'

इसीसे ज्ञानी महात्मा पुरुष मुक्तिका निरादर करते हैं

और भक्तिनिष्ठ रहना चाहते हैं—'मुक्ति निरादर भगति लुभाने।' मुक्ति उनके पीछे-पीछे घूमती है, पर वे उसे स्वीकार नहीं करते; क्योंकि वे संसारके मायाबन्धनसे तो सर्वथा मुक्त हैं ही, भगवान्के प्रेमबन्धनसे मुक्ति उन्हें कदापि इष्ट नहीं! ऐसे प्रेमी भक्त जिन भगवान्को प्रेमरसास्वादन कराते हैं और स्वयं जिनके मधुरातिमधुर दिव्य प्रेमसुधा-रसको प्राप्त करते हैं, वे भगवान् निस्संदेह ही सर्वतत्त्व-विलक्षण हैं।

इन भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं श्रीराधारानी—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्तो मुनिभिर्गूढवेदिभिः॥

(स्कन्दपुराण)

'श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं, उनके साथ सदा रमण करनेके कारण ही रहस्य-रसके मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष श्रीकृष्णको 'आत्माराम' कहते हैं।' इसी प्रसङ्गमें भगवान्की महिषी श्रीकालिन्दीजी कहती हैं—

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।

'आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा निश्चय ही श्रीराधाजी हैं।' इन श्रीराधा-माधवका वह भावराज्य अतिशय उज्ज्वल है। वहाँ प्रिया-प्रियतमकी अचिन्त्य अमल मधुरतम लीला नित्य चलती रहती है। 'अक्षर कूटस्थ ब्रह्म' जिनकी पद-नख-ज्योति हैं और जो ब्रह्मके आधार हैं, उन परात्पर श्यामसुन्दरका वहाँ लीलाविहार निरन्तर होता रहता है। वह लीलाका महान् मधुर सागर अत्यन्त शान्त होनेपर भी सदा उछलता रहता है। स्वयं नटनागर ही विविध मनोहारिणी भावलहरियाँ बनकर खेलते रहते हैं। उस भावराज्यमें ज्ञान-विज्ञान छिपे रहकर रसिकेन्द्र-शिरोमणि रसरूप भगवान् श्यामसुन्दरके द्विधारूप श्रीराधा-माधवका और श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा श्रीगोपाङ्गनाओंका मधुरतम लीला-रस-रंग देखते रहते हैं। जो ज्ञानी-विज्ञानी महात्मा इस भावराज्यमें पहुँचते हैं, उनके वे ज्ञान-विज्ञान यहाँ अपने ही दुर्लभ फलका सङ्ग पाकर परम प्रफुल्लित हो जाते हैं। ज्ञान-विज्ञानके अधिष्ठातृ-देवता सदा अतृप्त ही रहते हैं; क्योंकि उन्हें लीला-रसका पान करनेके लिये कभी अवसर ही नहीं मिलता। पर प्रेममय ज्ञानी पुरुषोंके साथ वे जब यहाँ पहुँचते हैं, तब रसदर्शनके लिये वे छिप जाते हैं और अपने ही परम फल-स्वरूप श्रीराधाकृष्णकी रसमयी चिन्मय अविरल केवलानन्दरस-सुधा-प्रवाहिणी लीला देख-देखकर अपूर्व अतुलनीय आनन्द लाभ करते और कृतकृत्य होते हैं। ज्ञान-विज्ञानका जीवन यहाँ सार्थक हो जाता है। वे चुपचाप छिपे हुए रस-पान करते रहते हैं, कभी भी प्रकट होकर लीला-रसमें विघ्न नहीं डालते; क्योंकि इस प्रेम-रसमें ज्ञानकी खटाई पड़ते ही यह फट जाता है। वहाँ इसमें अलौकिक लीलाकी अनन्त मधुर तरङ्गें नित्य उठती रहती हैं। यह वही रस है, जो सभी रसोंका उद्गमस्थान नित्य महान् परम मधुर रस है। वस्तुतः निरतिशय रसमय श्रीभगवान् ही यहाँ महाभाव-परिनिष्ठित होकर रसरूपमें भी प्रकट रहते हैं। देवता, भाग्यवान् असुर, किंनर, ऋषि, मुनि, पवित्र तपस्वी, परम पवित्र—सिद्ध पुरुष सभी इसके लिये ललचाते रहते हैं; पर इसे पाना तो दूर रहा, इस मनभावन रसमय भावराज्यको वे देख भी नहीं पाते। कर्म-कुशल कर्मी, समाधिनिष्ठ योगी और छिन्नग्रन्थि ज्ञानी पुरुष इस रसमय भावराज्यकी कल्पना भी नहीं कर पाते, इसका अर्थ ही उनकी समझमें नहीं आता। इसीसे वे इसकी अवहेलना करते हैं। इस भावराज्यमें निवास करनेवाली रसलीला-निरत, रस-सेवाकी मूर्तिमान् विग्रह जो परम श्रेष्ठ दिव्य सखी, सहचरी, मंजरियाँ हैं, अति श्रद्धाके साथ जो उनकी चरण-रजका सेवन करता है, जो तर्कशून्य साधक अपने रसयुक्त हृदयको भावराज्यके उज्ज्वल भावोंसे भरता रहता है, जो तुच्छ घृणित भोगोंसे और कैवल्य मोक्षसे सदा विरक्त रहता है और जिसका हृदय निरन्तर भावराज्यके आराध्यस्वरूप श्रीराधा-माधवके चरणोंमें ही आसक्त रहता है, वही भावराज्यके किसी महान् जनका—किसी मञ्जरीका कृपाकण प्राप्त कर सकता है और वही जन इस परम भावराज्यकी सीमामें प्रवेश कर सकता है।

इसी तत्त्वका स्मरण दिलानेवाला यह पद है—

'कर्म-राज्य'से उच्च स्तरपर सुन्दर 'भाव-राज्य' जगमग।
तत्व'ज्ञान' उच्चतर उससे, कष्टसाध्य अति 'राज्य' सुभग॥
परम 'भाव' का है उससे भी उच्च 'राज्य' अतिशय उज्ज्वल।
होती जहाँ प्रिया-प्रियतमकी लीला मधुर अचिन्त्य अमल॥
जिसकी पद-नख-आभा अक्षर ब्रह्म, ब्रह्मका जो आधार।
उसी परात्परकी लीलाका संतत होता जहाँ विहार॥
सदा उछलता रहता वह लीलाका शान्त मधुर सागर।
विविध भाव-लहरें मनहर बन स्वयं खेलते नट-नागर॥
छिपे ज्ञान-विज्ञान देखते जहाँ मधुर लीला-रस-रंग।
होते परम प्रफुल्लित पाकर अपने दुर्लभ फलका संग॥

प्रकट नहीं होते, करते वे नहीं कभी लीला-रस-भंग।
उठतीं वहाँ अलौकिक लीलाकी नित मधुर अनन्त तरंग॥
रस वह सभी रसोंका उद्गम, नित्य परम रस मधुर महान्।
महाभाव-परिनिष्ठित नित्य निरतिशय रसमय श्रीभगवान्॥
देव, दनुज, किंनर, ऋषि, मुनि, शुचि तापस, सिद्ध, परमपावन।
ललचाते रहते, मनसे भी देख न पाते मनभावन॥
कर्म-कुशल कर्मी, समाधिरत योगी, छिन्न-ग्रन्थि ज्ञानी।
नहीं कल्पना भी कर पाते, समझ नहीं पाते मानी॥
जो इस भावराज्यके वासी, रस-लीला-रत परम उदार।
सखी, सहचरी, दिव्य मञ्जरी, रस-सेवा-विग्रह साकार॥
उनकी चरणधूलिकी अति श्रद्धासे जो सेवा करता।
तर्कशून्य जो सरस हृदयको उज्ज्वल भावोंसे भरता॥
रहता तुच्छ घृणित भोगोंसे तथा मुक्तिसे सदा विरक्त।
जिसका हृदय निरन्तर रहता राधा-माधव-चरणासक्त॥
भाव-राज्यके जन महानका वही कृपा-कण पा सकता।
वही परम इस भाव-राज्यकी सीमामें जन जा सकता॥

नित्य रासेश्वरी, नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा और उनके प्रियतम श्रीकृष्णमें तनिक भी भेद नहीं है। पर लीला-रसास्वादनके लिये श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता परमाह्लादिनी श्रीराधा सदा श्रीकृष्णका समाराधन करती रहती हैं और श्रीकृष्ण भी उनका प्रेमाराधन करते रहते हैं। रस-सुधा-सागर ये श्रीराधा-माधव एक ही तत्त्वमय शरीरके दो लीलास्वरूप बने हुए एक-दूसरेको आनन्द प्रदान करते रहते हैं।

आनँद की अह्लादिनि स्यामा अह्लादिनि के आनँद स्याम।
सदा सरबदा जुगल एक मन एक जुगल तन बिलसत धाम॥

इनमें परकीया-स्वकीया लीला भी वस्तुतः रस-निष्पत्तिके लिये है। इस भेदका आग्रह वस्तुतः श्रीकृष्णके स्वरूपकी विस्मृतिसे ही होता है। श्रीराधा-माधव एक ही सच्चिदानन्दमय वस्तु-तत्त्व है; उसमें न स्त्री है न पुरुष। ब्रह्मवैवर्तपुराण और देवीभागवतमें आया है कि इच्छामय, सर्वरूपमय, सर्वकारण-कारण, परम शान्त, परम कमनीय, नव-सजल-जलद-श्याम परात्पर भगवान् श्रीकृष्णके वाम भागसे मूल प्रकृतिरूपमें श्रीराधाजी प्रकट हुईं। इन्हीं राधाजीके द्विविध प्रकाशसे लक्ष्मीका प्राकट्य हुआ। अतएव श्रीकृष्णाङ्गसम्भूता होनेसे श्रीराधाजी नित्य श्रीकृष्णस्वरूपा ही हैं। श्रीदेवीभागवतमें श्रीराधाजीके मन्त्र, उपासना, स्वरूपका और भगवान् नारायणके द्वारा उनकी स्तुतिका वर्णन है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

भगवती श्रीराधाका वाञ्छाचिन्तामणि सिद्ध मन्त्र है—'ॐ ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा'। असंख्य मुख और असंख्य जिह्वा-वाले भी इस मन्त्रका माहात्म्य वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। मूल प्रकृति श्रीराधाके आदेशसे सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने भक्तिपूर्वक इस मन्त्रका जप किया था। फिर, उन्होंने विष्णुको, विष्णुने विराट् ब्रह्माको, ब्रह्माने धर्मको और धर्मने मुझ नारायणको इसका उपदेश किया। तबसे मैं निरन्तर इस मन्त्रका जप करता हूँ, इसीसे ऋषिगण मेरा सम्मान करते हैं। ब्रह्मा आदि समस्त देवता नित्य प्रसन्नचित्तसे श्रीराधाकी उपासना करते हैं।

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात् कर्तव्यं राधिकार्चनम्॥
कृष्णप्राणाधिका देवी तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति॥
राध्नोति सकलान् कामांस्तस्माद् राधेति कीर्तिता॥
(श्रीदेवीभागवत ९।५०।१६ से १८)

"क्योंकि श्रीराधाकी पूजा किये बिना मनुष्य श्रीकृष्णकी पूजाके लिये अनधिकारी माना जाता है; इसलिये वैष्णवमात्रका कर्तव्य है कि वे श्रीराधाकी पूजा अवश्य करें। श्रीराधा श्रीकृष्णकी प्राणाधिका देवी हैं। अतः भगवान् इनके अधीन रहते हैं। ये नित्य रासेश्वरी भगवान्‌के रासकी नित्य स्वामिनी हैं। इनके बिना भगवान् रह ही नहीं सकते। ये सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करती हैं, इसीसे ये 'राधा' नामसे कही जाती हैं।"

श्रीराधाका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

'श्रीराधाका वर्ण श्वेत चम्पाकुसुमके सदृश है। मुख शारदीय शशिका गर्व हरण करता है, श्रीविग्रह असंख्य चन्द्रमाओंकी कान्तिके सदृश झलमल करता है। नेत्र शरद्-ऋतुके खिले हुए कमलके समान हैं। अरुण अधर बिम्बाफलके सदृश, स्थूल, श्रोणि और क्षीण कटिप्रदेश दिव्य करधनीसे अलंकृत है। कुन्द-कुसुमके सदृश इनकी स्वच्छ दन्तपंक्ति सुशोभित है। दिव्य नील पट्टवस्त्र इन्होंने धारण कर रखा है। इनके प्रसन्न मुखारविन्दपर मृदु मुसुकानकी छटा छायी है। विशाल उरोज हैं। दिव्य रत्नमय विविध आभूषणोंसे बिभूषित ये देवी नित्य बालारूपमें अल्पवर्षीय प्रतीत होती हैं। इनके कुञ्चित केश मल्लिका और मालतीकी मालाओंसे सुशोभित हैं। अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त सुकुमार है। इनका श्रीविग्रह मानो

शोभा—श्रीका लहराता हुआ अनन्त सागर है। ये शान्तस्वरूपा शाश्वत-यौवना राधाजी रासमण्डलमें समस्त गोपाङ्गनाओंकी अधीश्वरीके रूपमें रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। वेद इन श्रीकृष्णप्राणाधिका परमेश्वरीकी महिमाका गान करते हैं।

तदनन्तर पूजाविधान बतलाकर श्रीनारायण कहते हैं कि 'जो बुद्धिमान् पुरुष भगवती श्रीराधाका जन्म-महोत्सव मनाता है, उसे रासेश्वरी श्रीराधा अपना सांनिध्य प्रदान करती हैं—

× × × राधाजन्मोत्सवं बुधः।
कुरुते तस्य सांनिध्यं दद्याद् रासेश्वरी परा॥

फिर श्रीनारायण 'राधास्तवन' करते हैं—

नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि।
रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये॥
नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे।
ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदाम्बुजे॥
नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्रि शंकरि।
गङ्गापद्मावतीरूपे षष्ठि मङ्गलचण्डिके॥
नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि।
नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि॥
मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम्।
संसारसागरादस्मादुद्धराम्ब ! दयां कुरु॥

(श्रीमद्देवीभागवत ९।५०।४६ से ५०)

इस स्तोत्रका माहात्म्य वे यों बतलाते हैं—'जो पुरुष त्रिकाल संध्याके समय भगवती श्रीराधाका स्मरण करते हुए उनके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिये कभी कोई भी वस्तु किञ्चित् मात्र भी अलभ्य नहीं रह सकती। और आयु समाप्त होनेपर शरीरका त्याग करके वह बड़भागी पुरुष गोलोकधाम—रासमण्डलमें नित्य निवास करता है। यह परम रहस्य जिस किसीके सामने नहीं कहना चाहिये।'

यही श्रीकृष्णस्वरूपिणी श्रीकृष्णाह्लादिनी श्रीराधाने वृषभानुपुरमें माता कीर्तिदादेवीके यहाँ महान् पुण्यमय मधुर रूपमें प्रकट होकर नित्य अभिन्नस्वरूप श्रीकृष्णके साथ लीलाविहार करती हैं। इनके लीलासागरकी विविध ऋजु-कुटिल तरङ्गे हैं। प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव—ये सभी इस लीला-भाव-तरङ्गोंके ही स्वरूप हैं। इनकी पूर्ण परिणतिका नाम ही 'महाभाव' है। और श्रीराधा ही 'महाभावस्वरूपा' हैं। उनमें पूर्वोक्त सभी भावोंका एकत्र अन्तर्भाव है। लीलामें समय-समयपर सभी भावोंका लीला-क्षेत्रानुसार प्रकाश होता है। कभी वे अत्यन्त मानिनी बनकर श्रीकृष्णके द्वारा अत्यन्त विनयपूर्ण मानभङ्ग-लीला कराती हैं, तो कभी अपना नितान्त दैन्य प्रकट करती हुई (ललिताजीसे) कहती हैं—

सखी री हौं अवगुन की खान।
तन गोरी, मन कारी भारी, पातक पूरन प्रान॥
नहीं त्याग रंचक मो मन मैं, भरयौ अमित अभिमान।
नहीं प्रेम कौ लेस सेस, नित निज सुख कौ ही ध्यान॥
जग के दुःख-अभाव सतावैं, हो तन पीड़ा-भान।
तब तेइ दुख द्रग स्रवै अश्रुजल, नहिं कछु प्रेम निदान॥
तिन दुख-अँसुवन कौं दिखरावौं हौं सुचि प्रेम महान।
करौं कपट, हिय भाव दुरावौं, रचौं स्वाँग सज्ञान॥
भोरे प्रियतम मम, बिमुग्ध बन करैं बिमल गुन गान।
अतिसय प्रेम सराहैं, मोकूँ परम प्रेमिका मान॥
तुमहू सब मिलि करौ प्रसंसा, तब हौं भरौं गुमान।
करौं अनेक छद्म तेहि छन हौं, रचौं प्रपंच बितान॥
स्याम सरलचित, ठगौं दिवस निसि हौं करि बिबिध बिधान।
धृग जीवन मेरौ यह कलुषित, धृग यह मिथ्या मान॥

'री सखी ! मैं अवगुणोंकी—दोषोंकी खान हूँ। शरीरसे गोरी हूँ, परंतु मनसे बड़ी काली हूँ; मेरे प्राण पातकोंसे पूर्ण हैं। मेरे मनमें रंच-भर भी त्याग नहीं है, अपार अभिमान भरा है। प्रेमका तो लेश भी शेष नहीं है, नित्य-निरन्तर अपने सुखका ही ध्यान है। जब जगत्के दुःख-अभाव सताते हैं और शरीरमें पीड़ाकी अनुभूति होती है, तब उस दुःखके कारण आँखोंसे अश्रुजल बहने लगता है; उसमें तनिक भी प्रेमका कारण नहीं है। पर उन दुःखके आँसुओंको मैं महान् पवित्र प्रेमके आँसू बताकर प्रेम प्रकट करती हूँ। हृदयके भावको छिपाकर कपट करती हूँ और जान-बूझकर स्वाँग रचती हूँ। मेरे भोले-भाले प्रियतम मुझे परम प्रेमिका मानकर विमुग्ध हो मेरा निर्मल गुणगान करते हैं और मेरे प्रेमकी अतिशय प्रशंसा करते हैं। तुम सब भी मिलकर मेरी प्रशंसा करती हो, तब मैं अभिमानसे भर जाती हूँ। और उस अपने मिथ्या प्रेमस्वरूपकी रक्षाके लिये मैं अनेक छल-छद्म और प्रपञ्चोंका विस्तार करती हूँ। इस प्रकार मैं सरल-हृदय श्यामसुन्दरको विविध विधियोंसे दिन-रात ठगती रहती हूँ। धिक्कार है मेरे इस कलुषित जीवनको और धिक्कार है मेरे इस मिथ्या मानको !'

× × ×

श्रीराधा कभी सौन्दर्याभिमानकी लीला करती हैं तो कभी कहती हैं—'श्यामसुन्दर मुझ सद्गुणहीना कुरूपापर क्यों अपने सुखका बलिदान कर रहे हैं ? और उनके मथुरा पधार जानेपर उन्हें किसी उनके योग्य भाग्यशालिनीकी प्राप्तिसे सुखी होनेकी कल्पना करके प्रसन्न होती हैं।

व्रजमें उद्धवके पधारनेका प्रसंग है। श्रीउद्धवजी नन्दबाबा-यशोदामैया तथा कन्हैयाके सखाओंसे मिलनेके बाद श्रीगोपाङ्गनाओंके पास जाते हैं। वहाँके प्रसंगका 'भ्रमर गीत' के नामसे अनेकों महात्माओं और कवियोंने वर्णन किया है। फिर, उद्धवजी एकान्तमें श्रीराधासे मिलते हैं।

उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्णका संदेश सुनाते हुए कहते हैं—'भगवान् श्रीकृष्ण मथुरामें हैं। बहुत प्रसन्न हैं।' यह सुनकर परम भावाविष्ट हुई श्रीराधिकाजी कहने लगती हैं—

'उद्धव ! तुम मुझको यह किसका, कैसा संदेश सुना रहे हो ? मेरे प्रियतम कहाँ परदेश गये हैं ? तुम मिथ्या कहकर मुझे क्यों भुला रहे हो ? वे मेरे प्राणनाथ मुझे देखे बिना एक पल भर भी नहीं रह सकते। क्षण भरमें ही व्याकुल हो जाते हैं। मुझे छोड़कर वे कैसे चले जाते ? फिर मैं भी तो उन्हींसे जीवित हूँ, वे ही तो मेरे प्राणोंके प्राण हैं। वे छोड़कर चले गये होते तो शरीरमें ये मेरे प्राण कैसे रह पाते ?'

उद्धव ! तुम मुझको किसका यह सुना रहे कैसा संदेश ?
भुला रहे क्यों मिथ्या कहकर ? प्रियतम कहाँ गये परदेश ?
देखे बिना मुझे पल भर भी, कभी नहीं वे रह पाते।
क्षण भरमें व्याकुल हो जाते, कैसे छोड़ चले जाते ?
मैं भी उनसे ही जीवित हूँ, वे ही हैं प्राणों के प्राण।
छोड़ चले जाते तो कैसे तनमें रह पाते ये प्राण ?

इतनेमें ही राधाजीको श्यामसुन्दर कदम्बमूलमें खड़े दिखायी देने लगते हैं, तब वे कहने लगती हैं—'देखो, वह देखो उद्धव ! कदम्ब-मूलमें खड़े वे नन्दनन्दन कैसे मृदु-मृदु मुसकरा रहे हैं और निर्निमेष दृष्टिसे मेरी ओर झाँक रहे हैं। देखो, मेरे मुखको कमल मानकर प्राणप्रियतमके दृग-भ्रमर कैसे मतवाले हुए मधुर रसका पान कर रहे हैं। देखो ! वे प्राणनिकेतन कैसे भौंहें चलाकर, आँखें-मटकाकर मुझे संकेत कर रहे हैं, और अत्यन्त आतुर होकर एकान्त निकुञ्जमें बुला रहे हैं। अरे, उद्धव ! तुम कैसे भौंचक-से हुए कदम्बकी ओर ताक रहे हो ? क्या तुम उन्हें नहीं देख पाते या उन्हें देखकर प्रेम-विभोर हो रहे हो ?'

देखो, वह देखो, कैसे मृदु मृदु मुसकाते नन्दकिशोर।
खड़े कदम्ब मूल, अपलक वे झाँक रहे हैं मेरी ओर॥
देखो, कैसे मत्त हो रहे मेरे मुखको पंकज मान।
प्राणप्रियतमके दृग-मधुकर मधुर कर रहे हैं रस-पान॥
भ्रकुटि चलाकर, दृग मटकाकर मुझे कर रहे वे संकेत।
अति आतुर एकान्त कुञ्जमें बुला रहे हैं प्राणनिकेत॥
कैसे तुम भौंचक-से होकर देख रहे कदम्बकी ओर ?
क्या तुम नहीं देख पाते ? या देख हो रहे प्रेमविभोर ?

इतनेमें ही श्यामसुन्दर दीखने बंद हो गये, तब राधाजी घबराकर बोलीं—'हैं, यह क्या हो गया ? वे कैसे, कहाँ अन्तर्धान हो गये ? हाय ! वे मनमोहन आनन्दनिधान मुझको क्यों नहीं दीख रहे हैं ? क्या वे लीलामय आज फिर आँख-मिचौनी खेलने लगे ? अथवा क्या, मैंने उनको तुम्हें दिखला दिया, इससे उन्हें लज्जा आ गयी ? नहीं, नहीं ! तब क्या वे सचमुच ही मुझे छोड़कर चले गये ? हाय ! मुझे असीम अभागिनी बनाकर क्या वे मुझसे मुख मोड़कर चले गये ? सच कहते हो तुम उद्धव ! तुम सत्य संदेश सुना रहे हो। वे चले गये ! हाय ! वे चले गये ! अब मेरे लिये रोना ही शेष छोड़ गये !'

हैं, यह क्या ? सहसा वे कैसे कहाँ हो गये अन्तर्धान ?
हाय ! क्यों नहीं दीख रहे मुझको मनमोहन मोदनिधान॥
आँखमिचौनी लगे खेलने क्या वे लीलामय फिर आज ?।
दिखा दिया मैंने तुमको क्या इससे उन्हें आ गयी लाज ?॥
नहीं, नहीं ! तब क्या वे चले गए सचमुच ही मुझको छोड़ ?।
मुझे बनाकर अमित अभागिनि, हाय ! गये मुझसे मुख मोड़ !॥
सच कहते हो उद्धव ! तुम, हो सत्य सुनाते तुम संदेश।
चले गये हाँ ! चले गये वे छोड़ गये रोना अवशेष॥

फिर भाव बदला और प्रसन्नमुखी होकर वे कहने लगीं—

'जो प्रियतम निर्निमेष नेत्रोंसे सदा मुझे देखते ही रहते। मुझे सुखमय देखनेके लिये जो सभी प्रकारके द्वन्द्वों—(मान-अपमान, स्तुति-निन्दा आदि) को सुखपूर्वक सहते। मेरा दुःख उनके लिये अत्यन्त दुःखरूप और मेरा सुख उनके लिये आत्यन्तिक सुख होता। वे मुझको दुःख देकर अपने जीवन-सुखको कैसे खो देते ? अतः वे श्यामसुन्दर मुझको परम सुख देनेके लिये ही गये हैं और मथुरामें जाकर बसे हैं। मैं अब समझ गयी और उनके इस अति सुखदायक काम-को देखकर सुखी हो गयी। मुझे वे सभी उनकी-मेरी बीती बातें याद आ रही हैं। मैं अब उनके जानेका कारण समझ

गयी । इसीसे तो देखो ! मेरा शरीर प्रफुल्लित और पुलकित हो रहा है ।'

प्रति पल जो अपलक नयनोंसे मुझे देखते ही रहते ।
सुखमय मुझे देखनेको जो सभी द्वन्द्व सुखसे सहते ॥
मेरा दुःख, दुःख अति उनका, मेरा सुख ही अतिशय सुख ।
वे कैसे मुझको दुख देकर, खो देते निज जीवन-सुख ? ॥
मुझे परम सुख देनेको ही गये, बसे मथुरामें श्याम ।
समझ गयी मैं, सुखी हो गयी निरख सुखद अति उनका काम ॥
याद आ गयी, मुझे सभी वे मेरी उनकी बीती बात ।
जान गयी कारण, इससे हो रही प्रफुल्लित पुलकित गात ॥

तदनन्तर वे कहती हैं—'उद्धव ! मैं सद्गुणोंसे हीन रूप-शोभासे शून्य दोषोंकी खान थी । परंतु मुझमें मोहन श्यामका इतना मोह हो गया था कि उन्हें मोहवश मुझमें सुन्दरताकी प्रतीति होती थी । वे अपना सर्वस्व मुझको मोदसहित देकर मुझपर न्यौछावर रहते । बुद्धिमान् होकर भी वे मुझको 'प्राणेश्वरी, हृदयेश्वरी' बार-बार कहते, कभी थकते ही नहीं । मैं उन्हें बराबर समझाती—'प्रियतम ! तुम इस भ्रमको छोड़ दो ।' पर वे मानते ही नहीं, मुझे हृदयसे लगा लेते, मैं उनको अपने गलेका हार पाती । मैं सद्गुण-सौन्दर्यसे शून्य, प्रेमधनसे दरिद्र, रसकला-चातुर्यसे हीन, मूर्खा, मुखरा, बहुत बोलनेवाली, मिथ्या मान-मदसे चूर, बुद्धिहीन और मलिन थी । मुझसे कहीं अधिकतर सुन्दर सद्गुण-शील, सुन्दर रूपकी भण्डार अनेक सुयोग्य सखियाँ थीं, जो प्रियतमको अतिशय सुख प्रदान कर सकती थीं, परंतु प्रियतम उनकी ओर कभी भूलकर ताकते भी नहीं थे । मुझको सबसे अधिक प्यार देते । सर्वाधिक क्यों, प्रियतम सब ओरसे मुझको ही समस्त प्यार अनन्य रूपसे देते । इस प्रकार मेरे प्रति प्रियतमके बढ़े हुए व्यामोहको देखकर मुझे अत्यन्त संताप होता और मैं 'देव'से मनाया करती कि 'हे प्रभो ! आप उनके इस मोहको तुरंत हर लें'—

सद्गुणहीन, रूप-सुषमासे रहित दोषकी मैं थी खान ।
मोहविवश मोहनको होता मुझमें सुन्दरताका भान ॥
न्यौछावर रहते मुझ पर, सर्वस्व समुद कर मुझका दान ।
कहते, थकते नहीं कभी—'प्राणेश्वरि !' 'हृदयेश्वरि !' मतिमान ॥
'प्रियतम ! छोड़ो इस भ्रमको तुम',—बार-बार मैं समझाती ।
नहीं मानते, उर भरते, मैं कण्ठहार उनको पाती ॥
गुण-सुन्दरता-रहित, प्रेमधन-दीन, कला-चतुराई-हीन ।
मूर्खा, मुखरा, मान-मद-भरी मिथ्या मैं मतिमंद मलीन ॥
मुझसे कहीं अधिकतर सुन्दर, सद्गुण-शील-सुरूप-निधान ।
सखी अनेक योग्य प्रियतमको कर सकती अतिशय सुख दान ॥
प्रियतम कभी भूलकर भी पर, नहीं ताकते उनकी ओर ।
सर्वाधिक क्यों, प्यार मुझे देते अनन्य प्रियतम सब ओर ॥
रहता अति संताप मुझे प्रियतमका देख बढ़ा व्यामोह ।
देव मनाया करती मैं, 'प्रभु ! हर लें सत्वर उनका मोह' ॥

'मेरा अत्यन्त सौभाग्य है—देवने मेरी करुण पुकार सुन ली । मेरे मोहनका मोह आखिर मिट गया । अब वे मेरे प्राणाराम किसी सुन्दर चतुरा नागरीको प्राप्त करके परम मोद प्राप्त कर रहे होंगे, अनुपम सुखका उपभोग कर रहे होंगे । मेरी मनोकामना पूर्ण हो गयी । मैं आज परम सुखवती हो गयी । आनन्द-मङ्गलमय जीवनके शृङ्गाररूप श्यामसुन्दरका सुखकी खानके समान संदेश सुनकर आज मेरे भाग्य खुल गये—

मेरा अति सौभाग्य, देवने सुन ली मेरी करुण पुकार ।
मिटा मोह मोहनका, अब वे प्राप्त कर रहे मोद अपार ॥
पाकर सुन्दर चतुरा किसी नागरीको वे प्राणाराम ।
भोग रहे होंगे अनुपम सुख, पूर्ण हुआ मेरा मन-काम ॥
परम सुखवती आज हुई मैं खुले भाग्य मेरे हैं आज ।
सुनकर श्याम-सँदेश सुखाकर मुद-मंगलमय जीवनसाज ॥

इसके बाद उनके मनमें दूसरे ही क्षण पवित्र एकात्म-भावका उन्मेष हुआ और वे स्वरूप-स्थित होकर बोलीं—

'नहीं, नहीं ! मेरे प्रियतमसे ऐसा काम कभी नहीं हो सकता । मेरा और उनका जो अनोखा अति ललित प्रिय अनन्य सम्बन्ध है, वह अमिट है । मुझे छोड़कर 'वे' और उन्हें छोड़कर 'मैं' कभी रह सकते ही नहीं । वे मैं हैं, मैं वे हैं—दोनों एक तत्त्व है—सब प्रकारसे एक रूप हैं'—

नहीं, नहीं' ऐसा हो सकता नहीं कभी प्रियतमसे काम ।
मेरा उनका अमिट अनोखा प्रिय अनन्य सम्बन्ध ललाम ॥
मुझे छोड़ 'वे' उन्हें छोड़ 'मैं'—रह सकते हैं नहीं कभी ।
वे मैं, मैं वे—एक तत्व हैं, एक रूप हैं भाँति सभी ॥

इतनेमें उन्हें भगवान् श्यामसुन्दर दिखायी दिये । वे कह उठीं—

'अरे, अरे उद्धव ! देखो तो वे सुजान पुनः प्रकट हो गये हैं, प्रेमभरी चितवन है और उनके मधुर अधरोंपर मृदु मुसकान छायी हुई है । ललित त्रिभङ्ग हैं, घुघराले काले केश हैं, सिरपर मयूर-मुकुट है, कानोंमें सुन्दर कुण्डल झिलमिला

रहे हैं। वे मुरलीधर अधरोंपर मुरली धरकर मधुर तान छेड़ रहे हैं।' यों कहते-कहते ही प्रेमसुधा-सागर, राधामें विविध विचित्र भावतरङ्गें उठने लगीं, उन्हें देखकर उद्धव अत्यन्त विमुग्ध हो गये। उनके समस्त अङ्ग बरबस विवश हो गये। नयी उत्पन्न हुई शुभ प्रेम-नदीमें अचानक बाढ़ आ गयी। कहीं ओर-छोर नहीं रहा। पवित्र-हृदय उद्धव आनन्द-निमग्न होकर गिर पड़े। उनका शरीर धूलिधूसरित हुआ पृथ्वीपर लोट गया। धन्य !'

अरे, अरे उद्धव ! देखो तो पुनः प्रगट हो गये सुजान।
प्रेमभरी चितवन सुन्दर, छाई अधरों पर मृदु मुसकान॥
ललित त्रिभंग, कुटिल कुन्तल, सिर मोर-मुकुट, कल कुण्डल कान।
धर मुरली मुरलीधर अधरों पर हैं छेड़ रहे मधु तान॥
प्रेम-सुधा-सागर राधामें उठती बिबिध विचित्र तरंग।
देख, विमुग्ध हुए उद्धव अति, बरबस विवश हुए सब अंग॥
उदित नवीन प्रेमसरिता शुभ बढ़ी अचानक ओर न छोर।
भू-लुण्ठित तन धूलि-धूसरित शुचि उद्धव आनन्दविभोर॥

× × ×

इसी प्रकार राधाजी कभी वियोगका अत्यन्त दारुण अनुभव करके दहाड़ मारकर रोती हैं, कभी मिलन-सुखका महान् आनन्द प्राप्त करती हैं और कभी प्रत्यक्ष मिलनमें ही वियोगका अनुभव करके 'हा श्यामसुन्दर, हा प्राणप्रियतम !' पुकारने लगती हैं एवं कभी-कभी अपनेको ही श्यामरूप मानकर 'हा राधे,' हा राधे'की करुण ध्वनि कर उठती हैं। एक बार निकुञ्जसे लौटनेपर उन्हें ऐसा भान हुआ कि श्यामसुन्दर कहीं चले गये हैं। इसलिये वे वहीं वनमें वनधातुको जलमें घोलकर दाड़िमकी छोटी-सी पतली डालीको कलम बनाकर प्रियतमको पत्र लिखने बैठीं—इतनेमें ही अपने-आपको भूल गयी और 'हा राधे ! तुम कहाँ चली गयीं !' पुकार उठी। फिर राधाको पत्र लिखा। पीछे अपनी ही वाणीसे उन्होंने प्रिय सखी ललिताको अपनी यह भूल बतलायी—

सखी ! यह कैसी भूल भई।
लिखन लगी पाती पिय कौं लै दाड़िम कलम नई।
भूली निज सरूप हौं तुरत हि बन घनस्याम गई।
बिरह बिकल बोली पुकार—'हा राधे' कितै गई ?
पाती लिखी—'प्रिये ! हृदयेश्वरि ! सुमधुर सु-रसमई।
प्राणाधिके ! बेगि आवौ तुम नेह-कलह-बिजई॥
ठाढ़े हुए आय मनमोहन मो तन दृष्टि दई।
हँसे ठठाय, चेतना जागी, हौं सरमाय गई॥

× × ×

गोपी-प्रेमका स्वरूप-स्वभाव है—श्रीराधा-माधवका सुख। वे श्रीराधा-माधवके सुखमें ही सुखका अनुभव करती हैं, और नित्य निरन्तर उनके सुख-संयोग विधानमें ही लगी रहती हैं। एवं श्रीकृष्णप्राणा श्रीराधाजीका जीवन हैं श्रीकृष्ण-सुखमय। खाने-पीनेतकमें स्वाद-सुखकी अनुभूति भी उन्हें तभी होती है, जब उससे श्रीकृष्णको सुख होता है। वे 'अहं'को सर्वथा भुलाकर केवल श्रीकृष्णसुखकी ही चिन्ता करती रहती है—और प्रेम-स्वभावानुसार अपनेमें दोषोंका तथा प्रियतम श्रीकृष्णमें गुणोंके दर्शन करती हुई कहती हैं—

क्षण भर मुझे उदास देख जो कभी प्राणप्रिय पाते।
सारा मोद भूल तुम प्यारे ! अति ब्याकुल हो जाते॥
कभी किसी कारण जब मेरे नेत्रकोण भर आते।
तब तुम अति विषण्ण हो प्यारे ! आँसू अमित बहाते॥
कभी म्लानताकी छाया, यदि मेरे मुखपर आती।
लगती, देख धड़कने प्रिय ! तत्काल तुम्हारी छाती॥
मेरे मुख-मुसकान देख तुमको अतिशय सुख होता।
हो आनन्दमग्न अति मन तब सारी सुध-बुध खोता॥
मुझको सुखी देखने-करनेको ही प्रतिपल प्यारे।
होते पुण्य विचार मधुर तव कार्य त्यागमय सारे॥
मेरा सुख-दुख तनिक तुम्हें अतिशय है सुख-दुख देता।
मेरा मन नित इन पावन भावोंसे अति सुख लेता॥
दिया अमित, दे रहे अपरिमित, देते नित्य रहोगे।
सहे सदा अपमान अवज्ञा आगे सदा सहोगे॥
किया न प्यार कभी सच्चा मैंने निज सुख ही देखा।
निज सुख हेतु रुलाया, कभी हँसाया, किया न लेखा॥
दे न सकी मैं तुम्हें कभी कुछ सुख-सामग्री कोई।
निज मन-इन्द्रिय तृप्ति हेतु मैंने सब आयुस् खोई॥
बुरा मानना, दोष देखना, पर तुमने नहिं जाना।
मेरे स्वार्थसने कामोंको सदा प्रेममय माना॥
मत्सुखकारक विमल प्रेमको मैंने नित ठुकराया।
तब भी प्रेम तुम्हारा मैंने नित बढ़ता ही पाया॥
तुम-से तुम ही हो अग-जगमें तुलना नहीं तुम्हारी।
मेरा अति सौभाग्य यही जो मान रहे तुम प्यारी॥

'प्राणप्रियतम ! मुझे क्षण भरके लिये यदि कभी तुम उदास देख पाते हो तो प्रियतम ! सारा आनन्द भूलकर तुम

अत्यन्त व्याकुल हो उठते हो। कभी किसी कारण जब मेरे नेत्र-कोण भर आते हैं, तब तुम अत्यन्त उदास होकर आँखोंसे अपार आँसू बहाने लगते हो। कभी यदि मेरे मुखपर जरा भी म्लानताकी छाया भी आ जाती है, तो उसे देखकर उसी क्षण तुम्हारी छाती धड़कने लगती है। कभी मेरे मुखपर तनिक मुसकान देख लेते हो तो तुमको अतिशय सुख होता है और तुम्हारा मन अत्यन्त आनन्दमग्न होकर सारी सुध-बुध खो देता है। मुझको सुखी बनाने और सुखी देखनेके लिये ही प्रियतम ! प्रतिपल तुम्हारे मधुर पवित्र विचार और त्यागमय समस्त कार्य होते हैं। मेरे तनिक-से सुख-दुःख तुम्हें अतिशय सुख-दुःख देते हैं। तुम्हारे इन पवित्र भावोंको ग्रहण करके मेरा मन निरन्तर अत्यन्त सुखका अनुभव करता है।

'तुमने मुझको अपरिमित दिया, अपरिमित दे रहे हो और आगे भी सदा अपरिमित देते ही रहोगे। तुम मेरे द्वारा सदा ही अपमान-अवज्ञा सहते आये हो और भविष्यमें भी सदा सहते ही रहोगे। मैंने कभी सच्चा प्रेम नहीं किया, केवल अपना ही सुख देखा। अपने ही सुखके लिये तुम्हें कभी रुलाया, कभी हँसाया। कुछ भी हिसाब नहीं रखा। मैं तुम्हें कभी कुछ भी सुखकी सामग्री नहीं दे सकी। मैंने अपनी सारी आयु अपने मन-इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये ही खो दी। पर तुमने तो कभी बुरा मानना, मेरे दोष देखना जाना ही नहीं। और मेरे स्वार्थपूर्ण कार्योंको सदा प्रेममय ही माना। मुझे सुखी करनेवाले तुम्हारे निर्मल प्रेमको मैंने सदा ठुकराया, तब भी अपने प्रति तुम्हारे प्रेमको मैंने निरन्तर बढ़ता ही पाया। प्रियतम ! इस अग-जगमें तुम—सरीखे एक तुम्हीं हो ! तुम्हारी कहीं तुलना नहीं है। मेरा यही अत्यन्त सौभाग्य है, जो तुम मुझे अपनी प्रिया मान रहे हो !'

× × × ×

इसी प्रकार श्रीकृष्ण सदा अपने दोष देखते और श्रीराधाकी असाधारण गुणावलिपर विमुग्ध होकर उनके गुण-गानमें ही अपना सौभाग्य समझते हैं। जगत्के प्रेमी सिद्ध महापुरुषोंके प्रेमका निर्मल उच्च आदर्श दिखलाते हुए तथा साधन एवं तत्त्व बतलाते हुए वे श्रीराधाजीसे कहते हैं—

प्रिये ! तुम्हारा मेरा यह अति निर्मल परम प्रेम सम्बन्ध।
सदा शुद्ध आनन्दरूप है, इसमें नहीं काम-दुर्गन्ध॥
कबसे है, कुछ पता नहीं, पर जाता नित अनन्तकी ओर।
पूर्ण समर्पण किसका किसमें, कहीं नहीं मिलता कुछ छोर॥
सदा एक, पर सदा बने दो, करते लीला-रस-आस्वाद।
कभी न बासी होता रस यह, कभी नहीं होता बिस्वाद॥
नित्य नवीन मधुर लीला-रस भी न भिन्न, पर रहता भिन्न।
नव-नव रस सुख सर्जन करता, कभी न होने देता खिन्न॥
परम सुहृद, धन परम, परम आत्मीय, परम प्रेमास्पद रूप।
हम दोनों दोनोंके हैं नित, बने रहेंगे नित्य अनूप॥
कहते नहीं, जनाते कुछ भी, कभी परस्पर भी यह बात।
रहते बसे हृदयमें दोनों, दोनोंके पुनीत अवदात॥
नहीं किसीसे लेन-देन कुछ जगमें नहीं किसीसे काम।
नही कभी कुछ इन्द्रिय-सुखकी कलुष कामना अपगति-धाम॥
नहीं कर्मका कहीं प्रयोजन, नहीं ज्ञानका तत्वादेश।
नहीं भक्ति-साधन विधिसंगत, नहीं योग अष्टाङ्ग विशेष॥
नहीं मुक्तिको स्थान कहीं भी, नहीं बन्धभयका लवलेश।
आत्मसात् सब हुआ प्रेमसागरमें, कुछ भी बचा न शेष॥
प्रेम-उदधि यह तल गभीरमें रहता शान्त अडोल अतोल।
पर उसमें उन्मुक्त उठा करते हैं नित्य अमित हिल्लोल॥
उठती वहीं असंख्य रूपमें ऊपर उसमें विपुल तरंग।
पर उन तरुण तरंगोंमें भी उसकी शान्ति न होती भंग॥
अडिग, शान्त, अक्षुब्ध सदा गंभीर सुधामय प्रेम-समुद्र।
रहता नित्य उच्छ्वलित, नित्य तरंगित, नृत्य निरत अक्षुद्र॥
शान्त नित्य नव-नर्तनमय वह परम मधुर रसनिधि सविशेष।
लहराता रहता अनन्त वह नित्य हमारे शुचि हृद्देश॥
उसकी विविध तरंगें ही करतीं नित नव लीला-उन्मेष।
वही हमारा जीवन है, है वही हमारा शेषी-शेष॥
कौन निर्वचन कर सकता, जब परमहंस मुनि-मन असमर्थ।
भोक्ता-भोग्यरहित, विचित्र अति गति, कहना सुनना सब व्यर्थ॥

'प्रियतमे ! तुम्हारा और मेरा यह अत्यन्त निर्मल प्रेम-सम्बन्ध सदा विशुद्ध आनन्दरूप है, इसमें काम-दुर्गन्ध है ही नहीं। यह कबसे है, कुछ पता नहीं, परंतु यह नित्य निरन्तर जा रहा है—अनन्तकी ओर। किसका किसमें पूर्ण समर्पण है, इसका कुछ भी पता कहीं नहीं लगता। हम सदा एक हैं, परंतु सदा दो बने हुए लीला-रसका आस्वादन करते हैं। यह रस न कभी बासी होता है, न इसका स्वाद ही बिगड़ता है। यह नित्य नवीन मधुर रहता है। यह लीला-रस भी हमारे स्वरूपसे भिन्न नहीं है, पर भिन्न रहता हुआ ही सदा नये-नये रस-सुखकी सृष्टि करता रहता है। कभी

खिन्नता नहीं आने देता। हम दोनों ही दोनोंके नित्य अनुपम, परम सुहृद्, परम धन, परम आत्मीय और परम प्रेमास्पद हैं। पर न तो कभी परस्परमें भी इस बातको कहते हैं और न कुछ जनाते ही हैं। हम दोनों ही दोनोंके हृदयमें पवित्र उज्ज्वल रूपमें सदा बसे रहते हैं। न किसी अन्यसे हमारा कुछ भी लेन-देन है, न जगत्‌में किसीसे कुछ काम ही है। और न दुर्गतिके धामरूप इन्द्रिय-सुखकी ही कभी कुछ कलुषित कामना होती है।

'वस्तुतः न तो हमारा कहीं 'कर्म'से कुछ प्रयोजन है, न हमपर तत्त्वज्ञानका ही कोई आदेश है, न हममें विधिसङ्गत भक्ति-साधन है और न अष्टाङ्ग योग-विशेष है। यहाँतक कि मुक्तिके लिये भी कहीं हमारे जीवनमें स्थान नहीं है तथा बन्धनके भयका भी लवलेश नहीं है। सब कुछ प्रेमसागरने आत्मसात् कर लिया है। कुछ शेष बचा ही नहीं।

'वह प्रेम-समुद्र तलमें सदा ही अतुलनीय, गम्भीर, शान्त और अचल रहता है पर उसमें उन्मुक्त रूपसे नित्य अपरिमित हिलोर उठते रहते हैं। वहाँ ऊपर असंख्य विपुल तरङ्गें नाचती रहती हैं; परंतु उन तरुण तरङ्गावलियोंसे उसके तलकी शान्ति कभी भंग नहीं होती। यह सुधामय प्रेम-समुद्र सदा ही अचल, अक्षुब्ध और शान्त बना रहता है, पर साथ ही यह महान् नित्य उछलता, नित्य लहराता और नित्य नाचता भी रहता है। यह शान्त और नित्य नवरूपसे नृत्य-रत, विशेषरूपसे परम मधुर अनन्त रस-समुद्र नित्य-निरन्तर हमारे पवित्र हृदय-देशमें लहराता रहता है। इसकी विविध तरङ्गें ही नित्य नवीन लीला-रसका उन्मेष करती हैं। हम परस्पर प्रेमी-प्रेमास्पद प्रिया-प्रियतमका यही जीवन है—यही हमारा शेष है और यही शेषी है। जब परमहंस मुनियोंका मन भी असमर्थ है तब इस भोक्ता-भोग्य-रहित, अत्यन्त विचित्र गतियुक्त हमारे स्वरूपका तथा इस प्रेम-रसका निर्वचन कौन कर सकता है? यहाँ कुछ कहना-सुनना सभी व्यर्थ है।'

श्रीराधा-माधवकी मधुर लीला अनन्त है। जिन भाग्यवानोंके मानस नेत्रोंमें इनका उदय होता है, वे ही इनके आनन्दका अनुभव करते हैं। अनिर्वचनीयका निर्वचन तो असम्भव ही है।—'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्।'

परंतु उपर्युक्त विवेचनसे श्रीराधा-माधवके तत्त्व-स्वरूपकी, साधनाकी कुछ बातें समझमें आयी होंगी। इसी व्याजसे श्रीराधा-माधवका कुछ चिन्तन बन गया। यही इस तुच्छ प्राणीका परम सौभाग्य है। आज रस-प्रेम-स्वरूप श्रीश्यामसुन्दर-की अभिन्नरूपा श्रीराधाका यह प्राकट्यमहामहोत्सव है। हमारा परम सौभाग्य है कि इस सुअवसरपर श्रीराधाके चरण-स्मरण-का यह शुभ संयोग उपस्थित हुआ है। आइये, अन्तमें हम सब मिलकर प्रार्थना करें—

राधाजू हम पै आजु ढरौ।
निज, निज प्रीतम की पद-रज-रति हमैं प्रदान करौ॥
बिषम बिषय रस की सब आसा-ममता तुरत हरौ।
भुक्ति-मुक्ति की सकरु कामना सत्वर नास करौ॥
निज चाकर-चाकर-चाकर की सेवा-दान करौ।
राखौ सदा निकुंज निभृत में, झाडूदार बरौ॥

बोलो श्रीकीर्तिकुमारी वृषभानुनन्दिनी श्रीकृष्णानन्दिनी राधारानीकी जय! जय! जय!!!

निश्चय

मैं अपराधिनि, अघी-कलंकिनि हूँ निश्चय ही सभी प्रकार।
छोड़ तुम्हारे पदतलको पल, पर न मुझे जाना स्वीकार॥
दुत्कारो, डाँटो, ठुकराओ, मारो, करो असद्व्यवहार।
पड़ी रहूँगी, नहीं हटूँगी, तिलभर छोड़ चरण-तल-द्वार॥
अति रूखा बर्ताव करो या दो मनमाना मनका प्यार।
पर मत कहना कभी चले जानेको मुझसे तुम सरकार!॥
नहीं लाज-भय-सकुच-सहम-भ्रम, नहीं लोक-परलोक-विचार।
नहीं तनिक स्तुति-निन्दाका डर कहे क्यों न कुछ भी संसार॥
मधुर-भयानक सब स्थितियोंका सदा करूँगी मैं सत्कार।
चरण-धूलि मैं चरणोंमें ही लगी रहूँगी नित अनिवार॥

श्रीश्रीजयदेव महाप्रभु

(लेखक—गोस्वामीजी श्रीयमुनावल्लभजी)

(मङ्गलाचरण)

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

(गुरुप्रार्थना)

यद्वाचामचिराचमत्कृतिकृते चार्वीं चिदुल्लासितां
यच्चारुविचारचारणचरीं कृष्णश्चिनोति स्वयम् ।
यो लोकत्रयकोकशोकशमनस्वातन्त्र्यदीक्षागुरु-
स्तस्मै श्रीजयदेवनामगुरवे गोस्वामिने ते नमः ॥

(इष्टभावना)

लक्ष्म्या यश्च न गोचरीभवति यन्नापुः सखायः प्रभोः
सम्भाव्योऽपि विरञ्चिनारदशिवस्वायम्भुवाद्यैर्न यः ।
यो वृन्दावननागरीपशुपतिस्त्रीभावलभ्यः कथं
राधामाधवयोर्ममास्तु स रहो दास्याधिकारोत्सवः ॥
मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥

(लक्ष्यप्रकाशः)

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम् ।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥

(आग्रहः)

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषु लीलायितम् ।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥

(प्रेमोत्सवः)

सा लावण्यचमत्कृतिर्नववयो रूपं च तन्मोहनं
तत्तत्केलिकलाविलासलहरीचातुर्यमाश्चर्यभूः ।
नो किंचित्कृतमेव यत्र न नुतिर्नागो न वा सम्भ्रमो
राधामाधवयोः स कोऽपि सहजः प्रेमोत्सवः पातु वः ॥

(श्रीजी)

अद्य श्व इति पदाभ्यां यत्किंचिद् दृश्यते सर्वम् ।
यो नित्यं कवलयति तस्मै कालाय प्रणतोऽस्मि ॥

श्रीजयदेवकालीन भारत, पंजाब और बंगाल

जिस समय पंजाबमें महमूद गजनवीके वंशजोंका राज्य था, सिंधपर अरब जातिका अधिकार, दिल्लीमें तोमर वंशका, अजमेरमें चौहान, कन्नौजमें राठौर, गुजरातमें बघेले, बुन्देलखण्डमें चंदेले, विहारमें पाल और बंगालमें सेनवंशका शासन था, उसी समय हिंदुओंकी फूटके कारण महमूद गजनवीने १७ बार भारतको लूटा । १५० सालतक इसीका वंश शासन करता रहा । किंतु गजनी और हिरातके पहाड़ी प्रदेशोंमें गोर-लोगोंका भी राज्य था । १२ वीं ई० के अन्तमें गियासुद्दीनगोरीने गजनीका राज्य ले लिया, और उसके छोटे भाई मुहम्मदगोरीने भारतमें मुस्लिम राज्यकी स्थापना की ।

विक्रम सं० १२३१ में सबसे प्रथम मुहम्मदगोरीने मुलतान लिया । १२३५ में पेशावर, १२३८ में सिंध और १२४२ में महमूदके वंशज खुसरो मलिकको जीतकर लाहौरपर अधिकार कर लिया । उस समय श्रीजयदेव महाप्रभुके पुत्र गो० श्रीकृष्णदेव प्रभु लाहौरमें ही थे ।

भारतकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी । उस कालमें अनङ्गपाल ही दिल्लीपति थे । इनकी दो लड़कियाँ थीं, जो कन्नौज और अजमेरकी महारानियाँ थीं । उन्हींके दो पुत्र थे, जो जयचन्द और पृथ्वीराजके नामसे प्रसिद्ध हैं । महा० अनङ्गपालने मरते समय बड़े दौहित्र जयचंदको राज्य न देकर पराक्रमी समझकर पृथ्वीराजको दिल्लीपति बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप दोनोंमें विरोध हो गया ।

जयचंदने अप्रतिष्ठा करनेके लिये अपनी पुत्री संयोगिताके स्वयंवरमें पृथ्वीराजकी मिट्टीकी मूर्ति बनवाकर द्वारपालकी जगह खड़ी कर दी । महाराज पृथ्वीराज चौहान इस अपमानसे अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और उन्होंने स्वयंवरमें जाकर स्वयं संयोगिताकी वरमाला ग्रहण की । संयोगिताकी इच्छा भी इन्हींको पति बनानेकी थी । यहीं एकके द्वारा दूसरेके नाशकी नींव लग गयी ।

मुहम्मद गोरीने जब भारतपर प्रथम आक्रमण किया, तब राजपूतोंके संगठनके कारण सं० ११९१ में पृथ्वीराजने उसे हरा दिया । राजपूतोंसे पराजित होकर वह फिरसे बड़ी सेना लेकर आया । जयचंदने कुछ दिल्लीके सिंहासनके लोभसे उसकी सहायता की, जिसके कारण ११९२ में पृथ्वी-

राज परास्त होकर मारे गये और जयचंदको भी दो वर्षमें मार दिया गया।

मुहम्मद गोरीने गुजरातके राजा भीमदेवसे पराजय प्राप्त की, फिर उसका सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक विशाल सेनानायक बनकर गुजरात पहुँचा। अबकी बार वि० सं० १२५१ में राजा भीमदेव काम आ गये। इस विजयका समाचार सुनकर गोरीने कुतुबुद्दीन ऐबकको गजनी बुलाकर महान् सम्मान और दिल्लीका अधिकार दिया।

कुतुबुद्दीनके सरदार इख्तियारुद्दीनने वि० सं० १२५३ में पालवंशसे विहार, १२५७ में सेनवंशसे बंगाल हस्तगत किया और १२५८ में बुंदेलखण्डपर विजय प्राप्त की। अब बंगालके सेनवंशका वर्णन किया जाता है; क्योंकि हमारे चरित्रनायकका इसीसे सम्बन्ध है।

सेनवंश

दक्षिण भारतमें चोलवंशका प्रसिद्ध सम्राट् राजराजा था। उसके यहाँ विद्वानोंका बड़ा आदर होता था। जब उन्होंने तंजौरमें श्रीराजराजेश्वरका शिवमन्दिर बनवाया, तब उसकी सेवाके लिये पं० वीरचन्द्र या वीरेश्वरको अपना कुलपुरोहित नियुक्त किया। वे वहाँ बराबर सेवा तो करते रहे, किंतु वे किसीके हाथका बनाया भोजन नहीं करते थे।

राजराजाके पिताका श्राद्ध था, उन्होंने वीरको निमन्त्रण दिया। और भी ब्राह्मण निमन्त्रित थे। वीरचन्द्रने श्राद्धका कर्म तो विधिपूर्वक करवा दिया, किंतु दक्षिणा और भोजन नहीं स्वीकार किया। महाराज राजराजाने कुपित होकर इन्हें राज्य छोड़कर चले जानेका आदेश दिया। ये प्रसन्नतापूर्वक राजराजेश्वरके मन्दिरमें आये और शिवजीसे प्रार्थना की—'भगवन्! मैंने आपकी सेवा तो कुछ भी नहीं की; किंतु आज छोड़कर जा रहा हूँ।' शिवजीने प्रसन्न होकर वरदान दिया 'जाओ, बंगालमें तुम्हारी संतान स्वयं राजा बनेगी।'

अपने पुत्र सामन्त तथा बहूको लेकर राजासे बिना मिले ही बहुत-से कष्टोंका सामना करते हुए वीरचन्द्र बंगाल आ गये। सामन्त बड़ा हुआ और उसमें वही भावना पैदा हो गयी, जिसके लिये शिवजीकी आज्ञा थी। वीरका शरीर जब जाने लगा, तब उन्होंने पुत्रको बुलाकर कहा—'बेटा! कभी किसीके साथ अन्याय न करना।' इतना कहकर उन्होंने जीवनलीला समाप्त की। सामन्तकी माता अपने पतिके साथ सती हो गयी और पुत्र राजा सामन्त सेन कहलाया। वि० सं० १०५५ में उसने एक छोटा-सा राज्य बंगालमें स्थापित किया। राजधानीका नाम, शिवभक्त होनेके कारण, उसने काशीपुरी रखा, जो मयूरभंजमें स्थित थी।

यह राजा सनातन धर्मका पालन करनेवाला था। देवपारा-शिलालेखसे इनका इतिहास जाना गया। सामन्त सेनका पुत्र हेमन्त सेन हुआ, उसका पुत्र विजय सेन हुआ।

विजय सेनने सर्वप्रथम सूरलोगोंसे मित्रता की, फिर पालवंशके राजाओंको पराजितकर बंगालपर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त उत्तरी बिहार, आसाम और उड़ीसा-को भी अधिकारमें ले लिया और पश्चिमी बंगालमें विजयपुर और श्रीवाड़ी (सिउडी) नामका नगर बसाकर वहाँ राजधानी स्थापित की।

तदनन्तर विक्रमपुर (बाँकुड़ा) बसाया, सेनवंशका सितारा चमका दिया और अपने पूर्वपुरुष वीरसेनके नामसे 'वीरभूमि' राज विख्यात किया। विजय सेनका पुत्र विक्रम संवत् ११३६ तथा १०८० में वल्लाल सेन हुआ। यह भारी विद्वान् था। इसने बंगालमें कुलीन प्रथाके द्वारा जातियोंका नया संगठन किया तथा गौड़ और लखनौतीकी पुनः स्थापना करके ढाका जिलेके अन्तर्गत रामपाल-भवनके निकट एक सुन्दर राजप्रासाद भी बनवाया। वीरभूमिमें श्रीवाड़ी नामक राजभवन तैयार कराकर कन्दबिल्व नामका एक अपूर्व उद्यान (बगीचा) बनवाया और कभी-कभी उसमें रहने या एकान्त सेवन करनेके लिये एक राजमन्दिरका निर्माण कराया। यह विद्वानोंका बहुत सम्मान करता था, इसने स्वयं भी संस्कृतमें दो काव्य दानसागर, अद्भुतसागरकी रचना की।

इसके घरमें संवत् ११७५-(सन् १११९) में लक्ष्मण सेन नामक पुत्र हुआ। वल्लाल सेन गीतगोविन्दकर्ता श्रीजयदेव महाप्रभुके साथ यात्राके लिये प्रयाग चला गया, और सस्त्रीक मोक्षकी कामनासे त्रिवेणीके प्रवाहमें लीन हो गया।

लक्ष्मण सेन बहुत ही प्रभावशाली राजा हुए। उन्होंने श्रीजयदेव महाप्रभुजीसे वैष्णव-दीक्षा प्राप्त की और अपने जन्मके संवत्से नया संवत् चालू किया, जो अभी भी बंगालमें प्रचलित है। उनके दरबारमें संस्कृतके धुरन्धर विद्वान् रहते थे, जो क्रमशः गोवर्द्धनाचार्य धोयी, कविराज हलायुधशरण, उमापतिधर आदि नामोंसे विख्यात थे।

गुरुवर श्रीजयदेव महाप्रभुके गीतगोविन्दकी सभीने

प्रशंसा की और महाराजकी धर्मसभामें सबने मिलकर श्रीजयदेव महाप्रभुजीको कविराजके स्थानपर रसिकाचार्यकी उपाधिसे अलंकृत किया।

बंगालमें आजतक जो श्रीहरिकीर्तनकी प्रथा प्रचलित है, श्रीजयदेव महाप्रभुके आदेशसे उसके जन्मदाता महाराज लक्ष्मण सेन ही हैं। इन्होंने संस्कृतमें सदुक्तिकर्णामृत आदि कई ग्रन्थोंकी रचना की। श्रीगुरुवर्य रसिकाचार्य श्रीजयदेव महाप्रभुके लिये कन्दबिल्वमें श्रीराधामाधवजीका अत्यन्त सुन्दर मन्दिर बनवाया और सेवाका समाधान करनेके लिये कई ग्रामोंकी आजीविका लगा दी।

म० लक्ष्मण सेनकी उदारताकी प्रशंसा सभी इतिहासकारोंने की है। आपने कभी किसीके भी साथ अन्याय नहीं किया। निस्संदेह महाराज लक्ष्मण सेन एक प्रभावशाली और उदार शासक हुए।

अन्तमें श्रीजयदेव महाप्रभुकी आज्ञासे पुत्रोंको राज्यभार देकर आप नवद्वीपमें गङ्गातटपर भजन करने चले गये थे। १२वीं शताब्दीके कुछ शेष रहते (इख्तियारुद्दीन) मुहम्मद बिन बख्तियारने बंगालपर चढ़ाई की। उसकी इच्छा थी कि महाराजसे युद्ध करें। किंतु महाराज श्रीगुरुकी उत्तम भावनाको हृदयमें धारणकर बिना युद्ध किये ही सबको छोड़कर ढाकाके राजमहलमें चले गये और वहाँ शान्तिसेवन करके शरीर समाप्त कर दिया। आपके पुत्र विश्वरूप सेन तथा केशव सेनने कई वर्षोंतक युद्ध किया। पश्चात् तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें सेनवंशका अन्त हो गया। उसी समय, जब महाराज वल्लाल सेन वीरभूमिके सिंहासनपर थे, श्रीजयदेव महाप्रभुजीका प्रादुर्भाव हुआ था। आपका चरित लिखनेके पहिले वंशका कुछ परिचय लिखा जाता है।

वंशपरिचय

वंशः को यत्र हरेर्भक्तो वा श्रीहरिर्जयति।
नामगुणावलिगानात्पुनाति लोकान् स्वयं पूतः॥ १॥

श्रीजयदेव महाप्रभु रसिक-सम्प्रदायके प्रवर्तक आद्य आचार्य हैं। पुराणोंके पश्चात् भगवान् श्रीराधामाधवकी इस प्रकारकी रसमयी शृङ्गार-माधुरीका वर्णन सबसे प्रथम श्रीगीतगोविन्दमें ही किया गया है।

विक्रमकी दसवीं शताब्दीके अन्तमें खत्रियोंके पुरोहित सारस्वत ब्राह्मण पं० श्रीगिरिधारीजी लाहौर (पंजाब) में रहते थे। रावी नदीके तटपर एक मन्दिर था, जिसमें सेवाके लिये विराजमान भगवान्‌का नाम श्रीगिरिधारीजी ही था। आपने तीन बार श्रीमद्भागवतका अष्टोत्तरशत सप्ताहपारायण किया, जिसके फलस्वरूप आपके यहाँ श्रीशुकदेवजीने जन्म लिया, जिनको हरदेव भी कहते थे। हरदेवजीके यहाँ ग्यारहवीं शताब्दीमें कार्तिक शुक्ला गोपाष्टमीके दिन मुलतानस्थानीय पं० वंशीलालजी तिक्खेकी पुत्री श्रीसुन्दरीजीसे श्रीभोजदेवजीका जन्म हुआ। आपका विवाह मुल्तानके निकटवर्ती ऊँचेग्रामके रहनेवाले श्रीगोपीलालजीकी कन्या श्रीराधाजीसे हुआ। इन्हीं श्रीराधा-भोजको रसिक-सम्प्रदायाचार्य श्रीजयदेव महाप्रभुके माता-पिता होनेका गौरव है। यह वंशावली श्रीजयदेव-वंशोद्भव गो० रामरायजी तथा गो० चंदगोपालजीने हिंदी तथा संस्कृतके छन्दोंमें लिखी है। उसके पश्चात् श्रीचंदजीके पुत्र एवं श्रीरामरायजीके शिष्य गो० श्रीराधिकागोपालजीने १००० पदोंमें श्रीगौड़ेश्वरसम्प्रदायवर्ती श्रीमहावाणीजीकी रचना की थी। क्रमशः हिंदीके उक्त दोनों काव्योंका संक्षेपमें हम उल्लेख करते हैं।

गो० श्रीरामराय प्रभुजीकी आदिवाणीजीके मङ्गलमें 'राजा भगवानदास' का पद—

जयजय श्रीजयदेव कृष्णमत मंडना।
सारस्वत द्विज मुकुट भोजकुल चंदना॥
जयदेव सुत श्रीकृष्ण, तिनके पुत्र गोविंदजू भये।
तिनके मुकुन्द अनन्य, तिन माधव सुवन प्रद्युम्न ये॥
तिन बाल मोहन लाल नन्द गोपाल तिन आतमज रुये।
तिन तनुज गुरु गोपाल, तिनके रामराय सुचंद ये॥
भगवानदास विनीत मंगल गावत करि पद-वन्दना।
जयजय श्रीजयदेव रसिक मत मंडना॥ ४॥

यद्यपि यह पद आमेरके महाराज भारमलके पुत्र राजा भगवानदासका रचित है, जो श्रीरामरायजीके शिष्य थे, तथापि यह श्रीरामरायजीकी आदिवाणीमें ही मिला है।

श्रीमहावाणीजी

रसिकाचारज सेव्य निधि (श्री) राधामाधवलाल।
वन्दन करि नामावली गावहु परम रसाल॥ १॥
कौशल गोत्र सुदेव यजु श्रीमाध्यन्दिनि शाख।
पंचप्रवर गोस्वामि कुल सारस्वत द्विज भाख॥ २॥
रावी नदी सुतीरपर सुन्दर ऊँची ठौर।
मन्दिर गिरिधारी हरी बसत नगर लाहौर॥ ३॥
अस्सी अंक समेत शुभ संवत एक हजार।
गिरिधारी पंडित भये गिरिधारीके प्यार॥ ४॥

तिन गिरिधारी के निकट पाठ भागवत कीन।
अष्टोत्तर शत वार त्रय भाव भक्ति रस लीन ॥ ५ ॥
तिन के श्रीहरदेव तिन पुत्र सकल गुन खान।
भोजदेव राधा प्रिया पति अति ही मतिमान ॥ ६ ॥
भोजदेव प्रभु तप कियो जगन्नाथ श्रीधाम।
श्रीजयदेव महाप्रभू प्रकट भये अभिराम ॥ ७ ॥
तिनके आत्मज रोहिणी माता सों सुखरूप।
कृष्णदेव आचार्य प्रभु रसिक सम्प्रदा भूप ॥ ८ ॥
तिन के श्रीगोविन्द जू तिनके देव मुकुन्द।
श्रीअनन्य तिन के सुवन, तिन माधव कुलचंद ॥ ९ ॥
श्रीप्रद्युम्न दयालु तिन बालकृष्ण तिन जान।
मोहन हरि तिन के भये लालमणी जन गान ॥१०॥
नन्दनन्दनाचार्य तिन, तिन के श्रीगोपाल।
गुरुगोविंद तिन के भये, तिन सुत गौरगोपाल ॥११॥
रामराय प्रभु तिन तनुज, मम गुरुदेव दयाल।
दूजे भ्राता पितृचरण श्रीप्रभु चंदगोपाल ॥१२॥
श्रीगुरु पद आदेश सों महाबानि सुखमूल।
गाऊँ रसिकाचार्य सखि-सम्प्रदाय अनुकूल ॥१३॥
मोसों माधवलाल जू, हो हरि राधा जान।
वो वृन्दावन वासनी नित्य केलि कर गान ॥१४॥
मेरे जीवन प्रान धन श्रीजयदेव उदार।
प्रनवों तिन पद कंज श्रीजगन्नाथ अवतार ॥१५॥
परम गुरूत्तम मम स्वयं गौरचंद भगवान।
नित्यानन्द अमन्द सुख रसिक संप्रदा प्रान ॥१६॥
रूप सनातन प्रान धन जो रस चरचा कीन।
सो सब तिन की कृपासों हों निजु कर लिख लीन ॥१७॥
ता पाछें जो कछु मिली कुल परम्परा देख।
महाबानि सोहू सरस उपमा तजि किय लेख ॥१८॥
श्रीराधा माधव बिषैं जग की उपमा झूठ।
तासों मैं सब पर दई नव निकुंज रज मूठ ॥१९॥
रसिक भक्त पद रज परश गावत नित्य विलास।
श्रीराधा प्रिया उपासना श्रीराधामाधव दास ॥२०॥

(इति श्रीमंगला आरती रसिकाचार्य नामावली गान)

श्रीधाम-वृन्दावनस्थ श्रीराधामाधवजीकी हवेलीमें यह मंगला समय कीर्तनमें नित्य गाया जाता है। इसके बाद और पद अष्टयाम सेवाके नियमसे हैं, जिनमें श्रीयमुनाजी एवं श्रीवृन्दावनका वैभव नित्य भावनासे गान किया गया है।

श्रीभोजदेवकी तीर्थयात्रा

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

पण्डितजीके पास पुरोहिताईका पैसा प्रचुर मात्रामें हो गया। आगे कोई खाने-खर्चनेवाला भी नहीं था। संतानके अभावमें उदासीन बने रहते। साधु-संतोंकी सेवाका समाधान सब दिन होता—कथंचित् किसीकी कृपाका कभी आशीर्वाद प्राप्त हो जाय। श्रीराधाजीको पुत्रप्राप्तिके लिये कोई भी व्रत बता देता, उत्तम उत्साहके साथ उसे उसी तरह पालन करतीं। मासमें बीस दिन उपवासमें ही व्यतीत होते।

एक दिन इनकी अटल भक्तिके वश हुए भगवान्ने किसी साधुके वेशमें आज्ञा दी—'माताजी! ये धन क्या काम आयेगा, तीर्थयात्रा करना ही इसका फल है।' ये भी तीर्थयात्राके लिये विचार तो बहुत दिनोंसे कर रहे थे; परंतु उस समय आज-जैसी यात्रा तो थी नहीं जो चौबीस घंटेमें जगन्नाथ-द्वारका हो आइये। तीर्थके लिये जानेवाले घरवाले मुहल्लेवाले, सबसे खूब मिलकर जाते थे। आ गये तो आ गये, नहीं तो जा तो रहे ही हैं।

पं० भोजदेवजीने श्रीगिरिधारी हरिका मन्दिर यजमानोंको सम्हला दिया। 'आयेंगे तो सेवा करेंगे, नहीं तो तुम सेवा करते रहना। जो कुछ सोना-चाँदी है, 'सब प्रभुका है।' यह कहते जाते, आँसू बहाते जाते। लाहौरके प्रेमी सेवक सब लोग आपको विदा करनेके लिये इकट्ठे हुए।

चैत्र शुक्लामें पण्डितजीने प्रयाण किया। भ्रमण करते कितने ही महीनोंमें श्रीजगदीशपुरी पहुँचे। यहाँ समुद्र-स्नान कर श्रीजगदीश्वरके लिये सेवा-सामग्री पहुँचायी और निष्ठापूर्वक पुरुषोत्तमके दर्शन किये, महाप्रसाद लिया और विश्राम किया।

अच्छा शुभ मुहूर्त देख आपने श्रीवासुदेव मन्त्रका पुरश्चरण प्रारम्भ कर दिया। द्वादशाक्षरके कारण बारह-बारह लाखके ३ पुरश्चरण समाप्त किये।

प्रभुकी कृपा

रथ-यात्राकी बड़ी भीड़ थी। सस्त्रीक आप भी दर्शन करने पधारे और स्वरचित अष्टकका गान करने लगे।

(श्रीजगन्नाथाष्टकम्)

कदाचित् कालिन्दीतटविपिनसंगीतकरवो
मुदाभीरीनारीवदनकमलास्वादमधुपः ।
रमाशम्भुब्रह्मामरपतिगणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

गद्‌गद कण्ठसे जिस समय भक्तिभाव भरे हुए स्वरमें आपने इस अष्टकका पाठ समाप्त किया, एक महान् आश्चर्यमयी घटना विघटित हुई । श्रीपुरुषोत्तमके श्रीअङ्गसे एक तेजःपुञ्ज निकलकर पण्डितजीके शरीरमें लीन हो गया । पण्डितजी गिर गये और मूर्च्छित हो गये । इस अलौकिक चमत्कारसे जनता चकित हो गयी और भगवान्‌के दर्शन छोड़ श्रीभक्त भोजदेवको देखनेके लिये भीड़ लग गयी । लोगोंने आपको उठाकर स्थानपर पहुँचाया । परंतु किसे रोका जाय । किस-किसको बताया जाय कि क्या हुआ । श्रीराधाजीकी व्यथाका क्या ठिकाना था । वे किससे कहें ? उसी समय जनसेवक भक्तभूषण महाराज वल्लाल सेन आ गये और भीड़ हटवायी । आदमियोंका प्रबन्ध करके वे चले गये और कह गये कि जो भी आवश्यकता हो, हमारे यहाँसे मँगा लेना ।

प्रभात हुआ, पण्डितजीकी मूर्च्छा भङ्ग हुई—श्रीराधाजी बहुत प्रसन्न थीं । इतनेमें ही महाराज आ गये । पण्डितजीसे सब समाचार पूछा, आपने कहा कि 'मैं पुत्रके लिये तप कर रहा था । श्रीजगन्नाथजीने मुझे आदेश दिया है, हम तुम्हारे घर जन्म लेंगे ।'

वल्लाल सेन बड़े चकित थे कि 'हम प्रतिवर्ष पुरी आते हैं, सेवा भी जैसी बनती है, करते ही हैं; किंतु हमको ऐसा दृश्य आजतक कभी देखनेको नहीं मिला । भगवान्‌की आपपर असीम कृपा है । अब हमारी तो यही प्रार्थना है कि आप हमारे साथ चलें और इस विचित्र चरित्रकी मनोहर झाँकीका लाभ करायें ।' पण्डितजी सस्त्रीक आग्रहवश महाराजके साथ हो लिये ।

कन्दबिल्वमें अवतार

कन्दबिल्वं महातीर्थं यत्र श्रीजगदीश्वरः ।
जयदेवस्वरूपेण प्रादुर्भूतो बलावनौ ॥ १ ॥
अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २ ॥

वीरभूमि-नरेशने कई दिन अपने पास निवास कराकर आज पण्डितजी महाराजको अपने सुन्दर कन्दबिल्वमें भेज दिया और अपने रहनेके उद्यानके उच्च राजप्रासादमें आपके रहनेका प्रबन्ध करा दिया । दास-दासी कितने ही आपकी सेवामें ही रहते । प्रफुल्लित वनराजकी लतावली तो आज राजसमाज-के विराजमान होनेसे हँस रही थी ।

अवतारका अवसर आया और आज विक्रम सं० ११६५, माघ शुक्ला ५ (वसन्तपञ्चमी) के मध्याह्नमें भोजपत्नी श्रीराधा-जीके गर्भसे श्रीजगन्नाथस्वरूप श्रीजयदेव महाप्रभुजीका मङ्गलमय प्रादुर्भाव हुआ ।

(क्रमशः)

भगवान् नित्य मेरे साथ रहते हैं

मैं अब कभी अकेला नहीं हूँ, मेरे नित्य सुहृद् सखा, मेरे अहैतुकी प्रेमी, मेरे परम दयामय स्वामी सदा सर्वत्र मेरे साथ हैं । आज मैं मनसे, तनसे, प्रत्येक इन्द्रियसे इस बातका अनुभव कर रहा हूँ—स्पष्ट स्पर्श पा रहा हूँ कि मेरे भगवान् मेरे साथ हैं । इसीसे मैं निर्भय और निश्चिन्त हो गया हूँ । सारे पाप-ताप, सारे कलुष-दोष मुझको छोड़कर भाग गये हैं । शान्ति मेरी नित्य संगिनी बन गयी है । आनन्द मेरा स्वभाव—स्वरूप बन गया है । निराशा, विषाद सब नष्ट हो गये हैं । मेरा जीवन सफल हो गया है । सदाके लिये सफल हो गया है । मैं सब प्रकारसे उनका हो गया हूँ । अब मुझपर एक उनको छोड़कर दूसरे किसीका कुछ भी आधिपत्य नहीं रह गया है । वे नित्य मुझमें घुलेमिले मेरे साथ रहते हैं—सदा, सर्वत्र, सब स्थितियोंमें !

श्रीभगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(षोडशनामके ३८ करोड़ मन्त्र अर्थात् ६ अरबसे अधिक नाम-जप)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम् ।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—'परीक्षित् ! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नामस्मरण करते हैं और दूसरोंसे करवाते हैं।'

बड़े ही हर्षकी बात है कि 'कल्याण' में प्रकाशित प्रार्थनाके अनुसार भगवत्प्रेमी पाठक-पाठिकाओंने गतवर्ष बहुत ही उत्साहके साथ नाम-जप स्वयं करके तथा दूसरोंसे करवाकर महान् पुण्यका सम्पादन किया है । उनके इस उत्साहका पता इसीसे लगता है कि पिछले वर्ष जहाँ ११३७ स्थानोंसे जपकी सूचना आयी दर्ज हुई थी, वहाँ इस वर्ष १२३३ स्थानोंकी सूचना दर्ज हुई है और मन्त्र-जप जहाँ लगभग ३३ करोड़ हुआ था, वहाँ इस वर्ष ३८ करोड़से भी अधिक हुआ है (जो निम्नलिखित आँकड़ोंसे प्रकट है), यद्यपि हमने प्रार्थना केवल २० करोड़के लिये ही की थी । इसके लिये हम उन सबके हृदयसे ऋणी हैं ।

(१) केवल भारतमें ही नहीं, बाहर विदेशोंमें भी जप हुआ है ।

(२) सोलह नामके महामन्त्रकी जप-संख्या जोड़ी गयी है । भगवान्के अन्यान्य नामोंका भी बहुत जप हुआ है, वह इस संख्यासे पृथक् है ।

(३) बहुत-से भाई-बहिनोंने जप अधिक किया है, सूचना कम भेजी है और कुछ नाम-प्रेमियोंने तो केवल जपकी सूचना दी है, संख्या लिखी ही नहीं ।

(४) बहुत-से भाई-बहिनोंने आजीवन नाम-जपका नियम लिया है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं ।

(५) बहुत-से भाई-बहिनोंने केवल जप ही नहीं किया है, उत्साहवश नाम लिखे भी हैं, यद्यपि हमारे पास लिखित नामोंके प्रकाशनकी उपयुक्त व्यवस्था नहीं है ।

(६) स्थानोंके नाम दर्ज करनेमें पूरी सावधानी बरती गयी है। इसपर भी भूल होना, कुछ स्थानोंके नाम छूट जाना सम्भव है । कुछ नाम रोमन या प्रान्तीय लिपियोंमें लिखे होनेके कारण उनका हिंदीरूपान्तर करनेमें भी भूल रह सकती है, इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं ।

(७) सोलह नामोंके पूरे मन्त्रका जप हुआ है—३८, १६, ३६, २०० (अड़तीस करोड़, सोलह लाख, छत्तीस हजार, दो सौ) । इनकी नाम-संख्या होती है ६, १०, ६१, ७९, २०० (छः अरब, दस करोड़, इकसठ लाख, उनासी हजार, दो सौ) ।

स्थानोंके नाम इस प्रकार हैं—

अंचलगुम्मा, अंजनी, अंजार, अइलख, अक्कलकोट, अकोढ़ा, अकोला, अगस्तमुनि, अचलजामू, अजमेर, अडगाँव, अड्डुधूराई, अतरझोला, अधारपुर, अनन्तनाग, अनन्तपल्ली, अनवरगंज, अन्तरबोलमा, अन्ता, अन्तू, अमझेरा, अमरावती, अमरेली, अमलापुरम्, अमलोह, अमावाँ, अमीनगर सराय, अमृतसर, अम्बाला, अरसारा, अर्तरा, अलगोल, अलवंडी, अलवर, अलीगंज (एटा), अलीगंज (मुंगेर), अलीगढ़, अल्मोड़ा, अशोकनगर, असगोली, असिफाबाद, असौधा, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहलोद, अहिल्यापुर, आकोट, आकोला, आक्याकलाँ, आगरा छावनी, आगरा शहर, आदिपुर, आबगीला सायर, आबूरोड, आमली, आम्मा, आरा, आलमपुर, आसिफाबाद, आसी, आसौंद, आष्टा, इकलहरा, इगतपुरी, इच्छापुर, इन्दलपुर जुगराज, इन्दारा, इन्द्राना, इन्दौर, इटहरी, इटावा, इडार, इमिलिया, इरोड, इलाहाबाद, ईंटहर, ईश्वरपुरा मानसिंहपुर, ईसागढ़, उखलदा, उखलीबाजार, उगारखुर्द, उजवा, उजान गंगौली, उज्जैन, उतारगाँव, उदयपुर, उधल, उन्हेल, उमरखेड़, उमरानाला, उमरिया, उमरी, उमल्ला, उमेदपुर, उरदान, ऊँचागाँव, ऊँझा, ऊना, ऊमरपुर, एकअम्बा, ए. पी. ओ. ५६, एरंडोल, ओजूह, ओमनगर, ओलिया झंडापुर, औरंगाबाद (गया), औरंगाबाद छावनी, औरंगाबाद (बाँसबरेली), ककढ़िया, कक्कीनाडा, कजरा, कदमा, कनेरा, कन्धार, कन्नौज, कन्नौद, कन्हेरगाँव, कटक, कटनी, कड़ैल, कमासिन, करकवेल, करणवास, करनामेपुर, करनाल, करमटाँड, करमा, करवाड़, करटी, करसोग, कराईकुडी, करौली, कलंजरी, कलकत्ता, कलाईकुण्डा, कलाबाचक, कलाली, कल्वाकुर्ती, कसवा, कसावाँ, काँकेर, कागुपाड्डु, काछीबड़ौदा, काजीपुर, काढ़ा, कातुरली, कानपुर, कामठी, कामतमपल्ली, कारिकड, कारीकल, कारीसाथ, कालकुण्ड, कालीकट, काल्रू, कापीठा, काशीपुर (कलकत्ता), कासगंज, किछा, किनरवेड, किनीयेल्लादेवी, किरकी, किसनगढ़, कीलपुर, कील्हापुर, कुवरगाँव, कुवाँ, कुड्डालूर, कुढ़ावल, कुढ़ेच, कुण्डल, कुण्डवापुर, कुतियाना, कुम्भकोणम्, कुम्भरलालो, कुम्हार, कुराली,

कुलकुलपल्ली, कुलटी, कुली, कुल्लू, कुशालगढ़, कुसौधी, कूँरा, कूचबिहार, केलवाड़ा, केशोपुर, केसली, कैलगढ़, कोंहड़ा, कोचिन, कोजीकोड, कोठड़ी, कोडंगल, कोडरमा, कोडलमोगर, कोडागाँव, कोण्डागाँव, कोतमा, कोपाखेड़ा, कोयमबतूर, कोयला, कोरल, कोलपुर, कोलास, कौरि, कौड़ीहार, कौसानी, खंडवा, खंडेहा, खंभालिया, खजूरी, खझौला, खडेर टीकतपुरी, खपराडीह, खमरिया, खम्हरिया, खरंजा कुतबपुर, खरखौदा, खरगपुर अरसारा, खर्गपुर, खलपुरा, खाचरियाबास, खानपुर, खापा, खामखेड़ा, खामगाँव, खिरकी, खिलचीपुर, खीरीकोटा, खुटार, खुरई, खोपली, खौरी (शाहपुरा), गंगापुर, गुंटूर, गगोट, गजपपुर (गाना), गजेन्द्रगढ़, गढ़गाँव, गढ़पुरा, गढ़मुक्तेश्वर, गढ़वा, गरियाबन्द, गरोठ, गर्चा, गवालियर, गहना, गाँधीधाम, गाजवेल, गाजियाबाद, गाडरवारा, गायछाँद, गुजारा, गुड़गाँव छावनी, गुड़ियारी, गुडेवल्लूर, गुढ़ावली खुर्द, गुरौरा, गुलबर्गा, गुलाना, गुलाबगंज, गेसूपुर, गोंदिया, गोखली, गोटी टोरिया, गोड्डर, गोड्हिया, गोनामा, गोपालपुर, गोपालपुरी, गोपालसमुद्रम्, गोरझामर, गोरयाकोठी, गोविन्दपुर (राँची), गोबिन्दपुर (सन्थाल परगना), गौतमपुर, घनौरा, घाटकोपर (बम्बई), चकपुरवा, चकराता, चकिया, चकौंध, चकौसी, चटियाखेड़ी, चण्डीगढ़, चन्दौसी, चमोली-गढ़वाल, चरौंदा, चाँईबासा, चाँदपुरा, चाँदराना, चालीसगाँव, चिंचौली, चितराँव-हिरवारा, चिताही, चितेगाँव, चित्रकोट, चिनानी, चिरगुडा, चिलवरिया, चीखलठान, चुनार, चुरारा, चोटीला, चोरहर चौसा, छपरा, छिछनी, छिन्दवाड़ा, जंडियाला, जगजीवनपुर, जगदीशपुर कादीपुर, जगदीशपुर अइयारी, जङ्गलोट, जनकपुर, जनगाँव, जबलपुर, जमसरी, जमुनिया, जम्मूतवी, जयपुर, जरिगुम्मा, जलगाँव, जलसन, जसवन्तगढ़, जसोई, जाकरपुरा, जाकोलाड़ी, जाटाऊ, जाम, जाम-कल्याणपुर, जामठी, जाम जोधपुर, जामनगर, जामलाड़ा, जार, जालना, जालिया, जावर्द, जिआलगोरा, जियाराम राधोपुर, जुड़ीकेपुरा, जुहावदा, जूनेखेड, जेतलपुरा, जेवर, जैतीपुर, जैतोलीतल्ली, जैनुद्दीनपुर, जोगबनी, जोगिया, जोधपुर, जौनपुर, जोरावरडीह, जोशीमठ, जोस्पाना, ज्ञानपुर, झरी, झलोखर, झाँसड़ी, झाँसी, झाड जयपुर (उड़ीसा), झाबुआ, झारसुगुड़ा, झालरापाटन, झींझक, झुँडिया, झुँथकी, झुमरी तिलैया, झूँठा, झुमियाँवाली, टटेरपुर, टड़वा पुरहरा, टिकरी, टिमणपुर, टिस्टा-ब्रिज, ठठिया, ठिकरीया, ठीकहाँ भवानीपुर, डबखेरा, डभोई, डिकौली, डिठौरी, डीग, डुब्बा, डुमटहर, डुमरी, डुमरीकलाँ, डूँगरगढ़, डेंगपद्रग्राम, डेंबिंबली, डोंगरी, डौंडी, ढ़ाणकी, तनकु, तपकरा, तरसारा, तलोदा, तहसील फतेहपुर, ताजपुर, ताण्डूर, तादली, तारापुर, तालबेहट, तिनाली, तिलकपुर, तिलैथू, तिलौली, तिर्वा, तिवारी, तुण्डी, तुनिहा, तुमकूर, तुरहापट्टी, तुर्कवलिया, तेंतुलिखुंटी, तेतरिया, तेमथा, तेलीचेरी, त्रिचनापल्ली, थायेतमयो, दंगेरु, दतिया, दनगढ़, दन्तेवाड़ा, दमगाड़ा, दराँग, दरियापुर, दरीबा, दरेकसा, दर्यापुरकला (निमाड़), दवनीवाड़ा, दसीयाँव, दहणाग्राम, दहिगाँव, दातला वेस्ट, दानेकेरा, दाबकेहरा, दारेसलाम, दार्जिलिङ्ग, दिघी, दिबरा बाजार, दियरा, दिलकुशा, दिलावलपुर, दिल्लाई, दिलीपनगर, दिल्ली छावनी, दिल्ली शहर, दिवियापुर, दुबराजपुर, दूबचर्ला, देउलगाँव साकरन, देवकली, देवगना, देवगाँव, देवधानुरे, देवरपल्ली, देवरी, देवरीकलाँ, देवाची आकंदी, देशनोक, देशवाल्या, देहरादून, दोकांदा, दोलाईश्वरम्, दोहद, दौलतपुर, धजापुरा, धनबाद, धनावाँ, धभुपुरा, धमतरी, धमाना, धमोलिया, धरणगाँव, धरम जैगढ़, धरमपुरी, धर्मशाला, धवारी, धाना, धानेपुर, धापेवाड़ा, धामड़गाँव, धामपुर, धामल, धारवाड़, धीरपुर, धीरी, धुले, धूरिहट, ध्रुमठ, नई, नई दिल्ली, नंदाहाड़ि, नगरपाड़ा, नगला उदैया, नगला बिरखू, नगला विधि, नगवा, नटिनी, नड़ियाद, नन्दग्राम (जबलपुर), नवाबगंज, नयागाँव, नरेडी, नरेन्द्रपुर, नरैना, नरोत्तमपुर, नलवा, नल्लजर्ला, नवधन, नवरंगपुर, नवादा, नांडोल, नागपुर, नागलपुर, नागौर, नाथद्वारा, नानगाँव, नापासर, नारदीगंज, नारलाई, नावाडीह, नासिक, नाहिल, निघवा, निबोल, निमिया, निवादा, नीमथु, नूह, नेक, नेत्थला, नेपानगर, नेम्मिकूर, नेहालपुर, नैनीताल, नैपाल, नैमिषारण्य तीर्थ, नौधन, नौपाड़ा, पंचरूखीआ, पंजवारा, पंढरपुर, पंढोरी, पकौली, पचलखी, पटना, पटेहराँकलाँ, पड़वाना, पत्थलगाँव, पथरियाँ जेंगन, पथरोट, पनगाँव, पनवासा बिक्रौरी, पन्त्यूड़ी, परतेवा, परमार, परसदा, परसागढ़ी, परासिया, पलायमकोलटाई, पलारी, पलाशी, पराया, परतापगढ़, पाकुड़, पाचोरा, पाटणवाव, पाटन, पाडली, पाण्डेखोला (वाडी), पाण्डेगाँव, पात्रपुटग्राम, पाथर्डी, पानीपत, पानीपत लाइन्स, पारडी, पारना, पालगंज, पालीताना, पावसी, पुआरखेड़ा, पुडुक्कोट्टाई, पुनकुन्नु, पुरम्, पुरा, पुरेना, पुलगाँव, पुलियूर, पुवायाँ, पूंजापुरा, पूना, पून्छ, पूरनपुर, पूर्णिया, पेन्डरा, पेशम, पैंची, पैडगुमल, पैड्डिपुरम्, पैनिया हिम्मत, पोकरन, पोड़ी, पोरबंदर, पौनिया रामकिशन, फकीरकुण्डपुर, फतेहगढ़, फतेहपुर, फरह, फरीदपुर, फरीदपुर (फैजाबाद), फरेंदा शुक्ल, फर्रुखाबाद, फागी, फिल्लौर, फुरसदपुरा, फुलवरिया, फुलबरी, फुलैरा, फूलपुर, फैजपुर, फैजाबाद, बंगीनोबाड़ी, बँगला, बकेदर, बक्सर, बखरी, बखेड़, बगडिया, बगलीकलाँ, बघी सलैया, बझर बुजुर्ग, बटिया

रोका, बड़गाँव, बड़नगर, बड़नपुर, बड़वदा, बड़हिया, बडियार गाँव, बड़ौदा, बदराबाद, बदायूँ, बनकट कैथी, बनमनखी, बनरकी, बनवारी छपरा, बनौल, बनौली, बबीना कैम्प, बमकोई, बमरौली, बमौर, बम्बई, बरकतपुर, बरघाट, बरवा खुर्द, बरहज, बरियामऊ, बरेली, बलरामपुर, बवानीखेड़ा, बसहा, बहादुरपुर, बहेटा, बहेला, बहौदीपुर, बाँका, बाँसडीह, बाँसी, बागली, बागलकोट, बान्दु, बाबूगढ़, बमौर-कलाँ, बारू, बालसमुन्द, बाल्हरा, बावल, बावल्या खुर्द, बाशिम, बासोदा, बिचुवा, बिछवाँ, बिजवार, बिजोलिया, बीजोवा, बिनैका, बिरसोला बाजार, बिलासपुर, बिसड़ा, बिसवाँ, बिसौनी, बिहारशरीफ, बिहिया, बीकानेर, बीजापुर, बीनापाल, बीबापुर, बीर, बीरसिंहपुरपाली, बीसलपुर, बुरला, बुरला हीराकुंड, बुरहानपुर, बुर्जा, बेंगलूर, बेगूसराय, बेडार, बेढ़ना लश्करीपुर, बेतूल, बेतियागंज, बेनकनहल्ली, बेलगाम, बेलमंडई, बेलरदोना, बेलापुरखुर्द, बेलोकलाँ, बेलोचामगढ़, बेल्लारी, बेहड़ी, बेहटा बुजुर्ग, बैकुण्ठपुर, बैजनाथपुर मठ, बैजापुर, बोछू, बोर्टाबाजार, भंडाना, भगतपुर, भगवतगढ़, भगवतीपुर, भच्छी, भटगाई, भटगामा, भड़फोरी, भड्री, भड़ौंच, भद्रावती, भमरहा, भरतपुर, भरदा, भरावदा, भरौली, भर्थना, भलुअनी, भवानीपुर राजधाम, भागीपुर, भादरण, भावनगर, भिलाई, भीकणगाँव, भीमड़ास, भीमनगर, भीलवाड़ा, भुड़िया, भुवाली, भूसावल, भृगुपुर, भैंसदेही, भैंसपुर, भौरिया, भोगाँव, भोजडे, भोजपुर, भोजुवा, भोड़हाँ (मुजफ्फरपुर), भोड़हा (पूर्णिया), भोपाल, मंझरिया, मंडावर, मऊआइमा, मकनपुर, मकुनाहि, मगरिया, मझोला, मटलूडीह, मट्ठकपुर, मटटूर अग्रहारम्, मड़कन, मड्डुकिमाला (मालाबार), मथुरा, मण्डावा, मदनेश्वर, मदरा, मदारपुर, मदुरा, मद्रास, मधुबनी, मनासा, मनेर, मलेथू बुजुर्ग, मल्लसमुद्रम्, मवैया, मस्की, महथी, महमदा, महरा, महरौनी, महागाँव, महाराजगंज (पन्ना), महाराजगंज (सारण), महाराजपुर, महिषादल, महीपविगहा, महुआवा, महू, महेवा, महेश्वर, महोबा, महोली, माटे, माँसी, माणवदर, माधोपुर, माधौपाली, मान्धाता ओंकारेश्वर, मालरकोटला, महारानीपेट, मीनावदा, मीनासगी, मीरजापुर, मीरपुर कुटी, मिरौना, मुंगेली, मुँजला, मुंडगाँव, मुगलीसरा, मुजफ्फरपुर, मुजरा, मुन्नीर्पल्लं, मुरादाबाद, मुरार, मुरैना, मूंदी, मूँसी, मेंगराग्राम, मेंगलूर, मेंट्रीग्रामा, मेंढ़ा, मेंबरपुर, मेंहदावल, मेड़तारोड, मेरठ, मेल्लमपेडी, मेहसाना, मैरवा, मैनपुर, मैनपुरी, मैली, मैसूर, मोंढ़ा, मोखा, मोखाड़ा, मोतीछपरा, मोतीपुर, मोहगाँव, मोहद्दीनगर, मोहम्मदपुर-मछनाई, मोहिउद्दीपुर, मोहिद्दीनगर बाजार, मौदह चतूर, मौदहा, मौधिया, येवला, रक्खनपुरवा, रगजा, रणजीतपुर, रतनगढ़, रतलाम, रत्नगिरि, रनियाँ, रविनथला, रसूलगढ़, रसूलापुर, रहावती उबारी, राँची, राँझी, राजकोट, राजगढ़ (उ० प्र०), राजगढ़ (म० प्र०), राजडीहाँ, राजपुर (चम्पारन), राजपुर (नैनीताल), राजमहेन्द्री, राजलदेसर, राजाखेड़ा, राजापुर, राजिम, राजोल, राधाउर, रानीखेत, रानीगंज बाजार, रानीबाग, रानीला, राबर्ट्सगंज, रामखेड़ी, रामदिरी, रामपट्टी, रामपुर, रामपुर अहिरौली, रामपुर हवीब, रायपुर, रायबोगा, रावतपुर, रावेर, रुड़की, रुड़की छावनी, रूदावल, रूनीजा सुवासड़ा, रूपसागर, रूपैडीहा, रूराअडडू, रेड़मा, रेडिमा, रेडिया, रेनवाल, रोड़प, रोंढ़ा, लक्ष्मीगंज, लखनऊ, लखावाड, लखीमपुर नार्थ, लखुरानी, लखोटिया, लभराकलाँ, ललितपुर, लहरी तिवारी डीह, लश्कर, लाखागुडा, लासलगाँव, लिम्बडी, लेड्डुवाडीह, लोहाना, लोहार्दा, लौकहा, वडीया, वनगाँव, वरकाना, वरहा, वरुड, वरुणाहा, वान्दा, वाराणसी छावनी, वाराणसी शहर, वारूटोला, वाल्टीवर, वावड़ी गजाभाई, वासखेड़ा, विजयनगरम्, विझूरी, विराट्नगर, विशाखापट्टनम्, विशुनपुरा, विश्वनाथपुर, विष्णुपुर (नेपाल), वीजापुर, वीरगाँव, वीरसिंहपुर, वुधुडीह, वृजराजनगर, वेखासण, वेल्लूर, वेल्लूर, वैसाडीह, शंकरपुर, शरफुद्दीनपुर, शर्मिष्ठापुर, शहरना, शाजापुर, शापुर, शाहआलमपुर, शाहदरा (दिल्ली), शाहनगर, शाहपुर, शाहपुर, शाहपुरपट्टी, शाहपुर, शाहपुर मगरौन, शाहपुरा, शिकोहाबाद, शिलकोट, शिवगंज, शिवपुरी, शिवानन्दनगर, शूजापुर, शेषपुरवा, शेखपुरा (आजमगढ़), शेखपुरा (मुंगेर), शैदापुर, शोलापुर, श्योपुरकलाँ, संगमनेर, संडा, सकती, सकरौली, सकला बाजार, सदवारा, सणसोली, सतना, सताल (खुर्द), सनताहार, सफराई, सफीपुर, सबौर, समनापुर, समस्तीपुर, समी, समेसर, समैला, सम्बलपुर, सरखिज, सरधना, सरबई, सरबतखानी, सरवाड़, सरानी, सरायकलाँ, सरिया, सलकिया, सलीम, सवाई माधोपुर, ससौला, सहजपुर, सहुलाखोर, साँभरझील, सागर, सागरपुर, सागौर, सादीपुर, सारोला, साईलशहर, सालहल्ली, सावरगाँव, सावरा, साहनपुर, सिंगारनगर, सिंघनपुरी, सिंघोला, सिकटौरा, सिकंदरपुर (फरुखाबाद), सिकंदरपुर (भागलपुर), सिकरहुला, सिकरा, सिकदोनी, सिगनवास, सिडरीऐमा,

सिद्दिपेट, सिद्धीर, सिमडेगा, सिरस, सिरसी, सिरान, सिलते, सिलोरी, सिलौड़ी, सिवनी, सिहोर, सिहोरा, सीकर, सीडम, सीतापुर, सीतामढ़ी, सीरी, सुकवा, सुनारखेड़ा, सुन्दरपुर, सुपौल, सुरत, सुरेमनपुर, सुरौली, सुल्तानपुर, सुसाड़ी, सुहृदनगर, सूखापठा, सूजापुर, सूरजपुर, सूरजपुर बी० सी० डब्लू, सेंठू, सेमल्या, सेमराबाजार, सेमरौता, सेलोटपार, सैयदराजा, सैलवारा, सोंढ़ी, सोडपुर, सोनगाँव, सोनवा, सोनाली, सोनीपुरा, सोमाटोला सोहरिया, सोहाँस, सौंदा, सौदड, सौरई, सौरेनीबाजार, सौली, हंसकेर, हटनी, हनुमानगढ़, हनुवाडीह, हरखबली, हरखोली, हरजीपुर, हरदा, हरदी, हरदोई, हरनाहार, हरपुर बोयहा, हरिद्वार, हरिहरपुर, हरीगंज, हरीगढ़, हरौली, हलीखेड़, हल्दाकेरी, हसनगंज, हाजीपुर, हिंगणघाट, हिंगणी, हिंडोण, हिंडोरिया, हिनौतिमा, हिप्परगी, हिरदनबिगहा, हुन्डीयाणा, हुमायूँपुर हुलगी, हेपतपुर, हैदराबाद, होलेनरसीपुर ।

नाम-जप-विभाग—**'कल्याण' कार्यालय, गोरखपुर**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आजके चरमोत्कर्षपूर्ण चिकित्सा-विज्ञानको मन्त्रकी अनुपम चुनौती

घटना कुछ महीनों पहलेकी है । एक सुप्रतिष्ठित बघेल-परिवारकी बात है । श्री वाय. पी. बघेल, एग्रीकल्चर असिस्टेंट (कृषि सहायक) रायपुरसे मेरी गत तीन-चार वर्षोंसे घनिष्ठता है । उनका स्वभाव बहुत ही मधुर और आनन्ददायक है ।

एक दिन मैंने देखा कि उनका साला श्रीरणवीर रुग्णावस्थामें पड़ा है। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि वह एक असाध्य हृदय-रोगसे ग्रस्त है, बचपनसे ही । सैकड़ो रुपयेका खर्च प्रतिवर्ष किया जाता है, व्याधि-निवारणार्थ । स्तम्भित-सा हुआ मैं सुनकर । आजके इस विज्ञान-युगमें भी क्या इस प्रकारके हृदय-रोगसे मुक्ति सुलभ नहीं । सहसा मेरा ध्यान आयुर्वेदिक औषधियोंकी ओर आकर्षित हुआ और मैं रायपुरके अतीव योग्य संस्कारी वैद्यके पास पहुँचा । उन्होंने आश्वासन दिया कि व्याधि दूर की जा सकती है । सम्भवतः मैंने भी श्रीबघेलको तदनुसार सुझाव दिया । वह परिवार मुझे बहुत ही इज्जतसे देखता है । मेरी हर बातपर बड़े ध्यानपूर्वक वे विचार करते हैं, यद्यपि मैं इस योग्य कथमपि नहीं । परिणामतः वैद्य महोदयके पास पहुँचे । करीब एक मासतक लगातार चिकित्सा चलती रही । पर श्रीरणवीरकी हालत अधिक-से-अधिक चिन्ताजनक होती जा रही थी । परिवारके प्रत्येक सदस्यके हृदयपर निराशाने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया । हृदयका धैर्य पिघलकर आँखोंमें आँसू बनकर बरसने लगा । लड़का बहुत ही सम्पन्न और सम्भ्रान्त माता-पिताका लाड़ला ज्येष्ठ पुत्र है । चौथेपनकी आँखें नित्यप्रति उसे खुश देखनेके लिये बेचैन रहती थीं । किसीकी भी सम्मति माननेके लिये वे सर्वदा तत्पर थे, उसकी चिकित्साके सम्बन्धमें ।

फिर अभी उस लड़केकी अवस्था भी कितनी है ! कली खिलनेके पूर्व ही मुरझाने लगी थी । स्कूलमें शिक्षक उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं मुक्त कण्ठसे उसकी अध्ययनकी अनुपम योग्यताको निरखकर ।

वैद्यकी सान्त्वना आशाको जीवन-दान देनेमें असमर्थ रही । सभी जाने-माने साधारण एम० बी० बी० एस० से लेकर अवकाश-प्राप्त प्रमुख चिकित्सक आये । सम्मति दी । अधिकारपूर्ण शब्दोंसे कह गये कि लड़केकी हालत किसी भी दशामें नहीं सुधर सकती ।' अबतक रणवीरका बोलना, उठना, बैठना और सभी प्रकारकी शारीरिक हलचलें स्थगित हो गयी थीं । धीरजका बाँध ढह गया । जीवनाशा तिरोहित हो चली । सभी व्याकुल और चिन्ताकुल थे इस स्थितिको देखकर ।

मैं प्रायः नित्य ही उनके यहाँ जाया करता था । उन दिनों 'ला' परीक्षाकी तैयारीमें लगा था; अतः जितनेसे आत्म-संतोष होता, उतना समय नहीं दे पाता था । दुखित अवश्य था । एक रात मैंने बघेलसे बातचीत की । दौरानमें कहा कि अब अशरण-शरण करुणा-वरुणालयके शरणमें ही पहुँचनेसे त्राण प्राप्त हो सकता है । जब मनुष्य निराश हो जाता है, तब उसे अन्ततः भगवान्‌की ही शरण दृष्टिगोचर होती है । निष्कर्षपर पहुँचे,—क्यों न परम दयालु, औढर दानी भोले-शंकरको स्मरण किया जाय । निश्चित हुआ महामृत्युञ्जय-मन्त्र-का अनुष्ठान ।

तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलइ सहाइ ।

—के अनुसार एक गैयतरा ग्रामवासी पण्डित टिकमरामजी शास्त्री अप्रत्याशितरूपसे रायपुर आ पहुँचे। मन्त्र प्रारम्भ करनेकी तिथि निश्चित हुई और पण्डितजी तन मनसे जुट गये इस सुकार्यमें।

मन्त्र-जापका केवल सातवाँ दिन था। परिणाम बहुत ही अलौकिक, अनुपम तथा आश्चर्यमें डालनेवाला निकला। रणवीरने माँको पुकारा। माँ हर्षातिरेकमें आत्मविह्वल हो उठी। वह अकचकी-सी, ठगी-सी, प्रस्तर-मूर्तिवत् खड़ी रह गयी। बहन दौड़ी आयी, हँसकर गले लगा लिया। आँखके मोती-दल सहसा गिरकर बिखर गये रणवीरके वक्षःस्थलपर। मन्त्रपर विश्वास दृढ़से दृढ़तर हुआ। भजन-कीर्तन भी साथ-साथ चलने लगा। शंकरजीकी आरती भी दोनो समय नित्यप्रति होने लगी।

ठीक २५ दिनमें सवा लाख मन्त्रका जप सम्पन्न हुआ। अबतक लड़केकी हालतमें आशातीत परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। वह कुछ चलने भी लगा। अब वह पूर्ण स्वस्थ और सानन्द है। क्या यह केवलमात्र आजके विज्ञान और डाक्टरोंपर विश्वास करनेवाले ईश्वरांशोंके लिये आश्चर्यका विषय नहीं है? पाठक ही निर्णय करें। लेखक आशा करता है कि पाठकगण इसे पढ़कर कुछ लाभान्वित अवश्यमेव होंगे।

—एक जानकार

(२)

कर्मका फल हाथोंहाथ

बात पुरानी है, परंतु है सच्ची। पुराने पंजाबके मुज़फ्फरगढ़ जिलेमें जंगलके सहारे एक छोटा-सा ग्राम था। वहाँ रामदास नामक एक दरजी रहता था। आस-पासके जमींदारोंके परिवारोंके कपड़े सीकर वह अपने परिवारका भरण-पोषण करता था।

यहाँकी जन-संख्यामें हिंदू पाँच प्रतिशतसे अधिक नहीं थे और उनके आचार-विचार भी मुसल्मानोंसे मिलते थे। यह सब होते हुए भी रामदास सीधा-सच्चा भक्त था। उसका साधन था कीर्तन। भगवन्नाम-कीर्तन और भगवान्‌की लीलाओंका गान भी चलता रहता और कपड़े भी सिये जाते। कभी कपड़ा सीनेकी मशीनकी टिक-टिकके साथ नामोच्चारणका तार बँध जाता तो कभी हाथकी सिलाईके साथ लीला-पदोंका गान होता। कलियुगमें अनेक दोष हैं, किंतु इसमें एक बहुत बड़ा गुण भी है—वह यह कि केवल कीर्तनसे ही बेड़ा पार हो जाता है।

नाम-कीर्तनसे उसका हृदय निर्मल हो गया था। अतः उसका श्रीभगवान्‌से प्रेम तथा संसारसे वैराग्य हो गया। उसका जीवन शान्तिमय तथा संतोषपरायण हो गया। वह हर समय प्रभु-कृपाका अनुभव करने लगा।

एक मुसल्मान पड़ोसीको एक हिंदूका शान्ति-संतोषसे रहना बुरा लगा। वह सोचता था कि यदि इस काफिरकी मशीन न रहे तो यह अपनी आजीविका अर्जन न कर सकेगा, तब वह और कहीं चला जायगा।

एक दिन उचित अवसर मिलनेपर उसने भक्तजीकी कपड़ा सीनेकी मशीन चुरा ली।

भक्तजी सोचने लगे कि 'मेरे प्रभुको मशीनकी टिक-टिक अच्छी नहीं लगती होगी, तभी तो उन्होंने उसे उठवा दिया है' वह प्रसन्नचित्तसे हाथसे ही कपड़े सीने लगा। उसने मशीनके चले जानेकी सूचना भी पुलिसमें नहीं दी।

इधर भगवान्‌की भक्तवत्सलता जाग्रत् हुई। उनसे भक्तकी यह हानि नहीं देखी गयी। चोरके दायें हाथकी हथेलीमें एक भीषण फोड़ा उठा, जिसमें इतनी पीड़ा थी कि न दिनको चैन, न रातको नींद आती थी। दूसरे ही दिन उसे कोट उट्टूके सरकारी अस्पतालमें जाना पड़ा। डाक्टरने नश्तर लगाकर पट्टी बाँध दी। औषध-प्रयोगसे जब फोड़ा कुछ अच्छा होने लगता, तब दूसरा फोड़ा निकल आता। चिकित्सक डाक्टर हैरान था। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि सारे प्रयत्न करनेपर भी उसका हाथ क्यों नहीं अच्छा होता। अन्तमें डाक्टर इस निश्चयपर पहुँचा कि रोगीने अवश्य ही इस हाथसे कोई घोर पाप किया है।

उसने रोगीसे स्पष्ट कह दिया कि तुमने इस हाथसे कोई घोर पाप किया है, जिसके कारण मेरे अनुभवसिद्ध औषधोंका प्रयोग करनेपर भी लाभ नहीं होता। तुमको अल्लाहसे अपना गुनाह बख्शवाना होगा।

रोगी समझ गया कि रामदासकी कपड़ा सीनेकी मशीन चुरानेसे ही उसको कष्ट भुगतना पड़ा है। उसने ग्राममें आकर

उचित अवसरपर मशीन भक्तजीके घरपर रख दी और उसके हाथका फोड़ा भी शीघ्र ही ठीक हो गया।

मशीन घरपर देखकर भक्तजी कहने लगे कि श्रीठाकुरजी-को टिक-टिक फिर सुननेकी इच्छा हुई होगी।

—श्रीनिरञ्जनदास धीर

(३-४-५)

मानवताके उदाहरणकी तीन सच्ची घटनाएँ

१९४७ में भारतके विभाजनके समय जो दंगे हुए थे, उनकी बात किसे याद नहीं है। आज भी उन्हें याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पेशावरमें ये ही दंगे चल रहे थे। हिंदूलोगोंको अपना सब कुछ छोड़कर भागना पड़ रहा था। नामको तो सरकार थी, पर चलती थी केवल गुंडोंकी। ऐसे समय स्वर्गीय डा० खान साहब हाथमें एक मोटा-सा डंडा लिये कंधेपर एक तौलिया डाले सारे शहरमें घूम रहे थे; जहाँ हिंदुओंको कठिनाईमें देखते, वहीं अपना सोटा टेककर खड़े हो जाते और चिल्लाकर कहते–'हिम्मत हो तो हिंदुओंपर हाथ उठानेसे पहले मुझे खत्म कर दो। मैं तुम्हें इनका खून न बहाने दूँगा।' खुदाई खिदमतगारकी ललकारके सामने खड़े रहनेकी हिम्मत उन भीरु गुंडोंमें कहाँ। सब तितर-बितर हो जाते। खान साहब जानते थे कि घटनाक्रम इस प्रकारसे चल रहा था कि हिंदूमात्रका वहाँ रहना असम्भव था। वे अपने-आप उन पीड़ितोंको भारत पहुँचानेकी व्यवस्था कर देते और उनके सामानको अपने कब्जेमें लेकर किसी-न-किसी मुसल्मानके द्वारा उसके मालिकके पास भिजवा देते। सरहदी सूबेसे आये हुए सैकड़ों ही नहीं, हजारों शरणार्थी डाक्टर खान साहबकी इस मानवताके साक्षी हैं।

(२) दूसरी घटना भी पेशावरकी ही और उन्हीं दिनोंकी है। मेरे एक परिचित सज्जनके मकानपर मुसल्मान भीड़ने आक्रमण किया। वे सज्जन रावलपिंडी गये हुए थे। उनका लड़का घरमें अकेला था। भीड़ ऊपर चढ़ आयी और लड़केसे माल-मत्तेके बारेमें पूछने लगी; लड़केको साक्षात् यमपाशसे काम पड़ गया। अचानक उसे भगवान्‌का नाम याद आ गया। बाहरसे किसीने आवाज लगायी–'पुलिस! पुलिस!!' भीड़में खलबली-सी मच गयी, सब तितर-बितर हो गये और लड़का भी भीड़के साथ मिल गया और घरसे बाहर निकल गया।

(३) तीसरी घटना एक छोटे-से लड़केकी है, होगा कोई बारह वर्षका। वह अपने जीवनमें पहली बार रेलयात्रा कर रहा था, घरसे टिकट और रास्तेके खर्चके लिये पाँच रुपये लेकर चला था। रेलकी पटरीके दोनो ओरके दृश्य देखते-देखते लड़केका मन नहीं भरता था। कभी इस खिड़की-पर जाता, कभी उस खिड़कीपर। इतनेमें टिकट-चेकर आया। लड़का बैठा रहा; उसे किसका डर था, टिकट तो जेबमें ही था। चेकरने पास आकर टिकट माँगा। लड़केने जेबमें हाथ डाला और उसके पैरोंसे जमीन खिसक गयी। बटुआ ही गायब था। या तो किसीने निकाल लिया या खिड़कीमेंसे गिर गया। पर अब वह करता भी क्या। असहाय बालक रो पड़ा। चेकर अपनी बहादुरी दिखाता जा रहा था—गालियोंकी बौछार और बीच जंगलमें उतार देनेकी धमकी। भगवान्‌के सिवा अब कौन सहारा था। सारे डिब्बेमें सन्नाटा छाया था। पर परायी आगमें कौन पड़े। सभी बुद्धिमान लोग थे। थोड़ी देरतक यही चलता रहा। क्रूर चेकर शायद घरसे लड़कर आया था और यहाँ अपनी बहादुरी दिखा रहा था।

डिब्बेके दूसरे छोरपर बैठे एक गरीब आदमीसे बच्चेका यह कष्ट न देखा गया। वहींसे चिल्लाया; 'बाबू साहब खबरदार, अगर जबान खोली है तो। आप मासूम बच्चेके चेहरेपर ईमानदारी नहीं देख सकते? लानत है आपपर! आप देख नहीं सकते, बेचारा बच्चा इतना सामान लेकर जा रहा है, क्या यह बिना टिकट हो सकता है? बोलिये, कितना देना पड़ेगा इसे? मुझसे ले लीजिये और उसकी जान बख्श दीजिये।' टिकट बाबूको पैसा देकर उस देवताने बच्चेसे कहा–'बेटे! फिक्र मत करो, भगवान् सबकी मदद करता है। मैंने कुछ नहीं किया। भगवान्‌ने तेरी मदद की। मैं गरीब आदमी हूँ। मेरा पता ले ले। अगर भगवान् तुझे पैसा दे तो मेरे रुपये वापिस कर देना; वरना इस सारे मामलेको भूल जाना। लड़का अपना पता देना चाहता था, पर उस सज्जनने कहा–'नहीं बेटे! मैं इस घटनाको याद नहीं रखना चाहता।' यह कहकर वह मानवरूपी देव अपने स्थानपर जा बैठा।

—श्रीरवीन्द्र

गीताप्रेस, गोरखपुरकी चित्रावलियाँ

साइज १५×२० नं० १, दाम २॥।), पैकिंग और डाकखर्च १)

इसमें १५×२० साइजके बढ़िया आर्टपेपरपर छपे हुए २ सुनहरे तथा ८ बहुरंगे सुन्दर चुने हुए चित्र हैं। टाइटल मोटे कागजपर छापकर लगाया गया है। चित्रोंके नाम निम्नलिखित हैं—

सुनहरी—१—युगल छवि, २—आनन्दकंद पालनेमें। **बहुरंगे**—१—वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण, २—श्रीव्रजराज, ३—भगवान् श्रीकृष्णरूपमें, ४—श्रीरामदरबार, ५—भुवनमोहन राम, ६—भगवान् शंकर, ७—भगवान् नारायण, ८—श्रीश्रीमहालक्ष्मीजी।

साइज १५×२० नं० २, दाम २॥।), पैकिंग और डाकखर्च १)

सुनहरी—१—भगवान् श्रीराम, २—आनन्दकंदका आँगनमें खेल। **बहुरंगे**—१—विश्वविमोहन श्रीकृष्ण, २—श्रीराधेश्याम, ३—श्याममयी संसार, ४—श्रीरामचतुष्टय, ५—महावीर, ६—भगवान् विश्वनाथ, ७—भगवान् विष्णु, ८—भगवान् शक्तिरूपमें।

साइज १५×२० नं० ३, दाम २॥।), पैकिंग और डाकखर्च १)

सुनहरी—१—रामदरबारकी झाँकी, २—कौसल्याका आनन्द। **बहुरंगे**—१—मुरलीमनोहर, २—श्रीनन्दनन्दन, ३—महासंकीर्तन, ४—कौसल्याकी गोदमें ब्रह्म, ५—दूल्हा राम, ६—भुवनारायण, ७—ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति, ८—श्रीलक्ष्मी-नारायण।

उपर्युक्त १५×२० साइजके—एक चित्रावलीका पैकिंग और डाकखर्चसहित मूल्य ३॥।), दो चित्रावलियोंका पैकिंग और डाकखर्चसहित मूल्य ६॥।=), तीन चित्रावलियोंका पैकिंग और डाकखर्चसहित मूल्य १०॥।)।

साइज १०×७॥ नं० १, दाम १।-), पैकिंग और डाकखर्च ॥।=)

इसमें १०×७॥ साइजके बढ़िया आर्टपेपरपर छपे हुए २ सुनहरे तथा १८ बहुरंगे सुन्दर चुने हुए चित्र हैं। टाइटल मोटे कागजपर छापकर लगाया गया है। चित्रोंके नाम निम्नलिखित हैं—

सुनहरी—१—युगल छवि, २—साकार-निराकार ब्रह्म। **बहुरंगे**—१—श्रीगणपति, २—कौसल्याकी गोदमें ब्रह्म, ३—ध्यानमग्ना सीता, ४—दीपावलि-दर्शन, ५—श्रीरघुनाथजी, ६—प्यारका बन्दी, ७—दधि-माखनके भूखे, ८—भक्त-मन-चोर, ९—वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण, १०—श्रीबाँकेविहारी, ११—श्रीराधाकृष्ण, १२—द्रौपदीको आश्वासन, १३—श्रीगौरी-शंकर, १४—भगवान् श्रीशंकर, १५—भगवान् श्रीविष्णु, १६—श्रीलक्ष्मीजी, १७—महावीरका महान् कीर्तन, १८—भारतमाता।

साइज १०×७॥ नं० २, दाम १।-), पैकिंग और डाकखर्च ॥।=)

सुनहरी—१—श्रीभगवान्, २—भगवान् श्रीराम। **बहुरंगे**—१—वनवासी राम, २—तपोवनके दिव्य पथिक, ३—पुष्पक-विमानपर, ४—भगवान् श्रीराम-लक्ष्मण, ५—श्रीरामदरबार, ६—मथुरासे गोकुल, ७—श्रीकृष्ण-यशोदा, ८—व्रज-सर्वस्व, ९—मुरलीका असर, १०—श्याममयी संसार, ११—व्रजराज, १२—विहारीलाल, १३—श्रीराधेश्याम, १४—योगीश्वर श्रीशिव, १५—शिव-परिवार, १६—पर्वताकार हनुमान्जी, १७—लक्ष्मीनारायण, १८—श्रीदुर्गा।

साइज १०×७॥ नं० ३, दाम १।-), पैकिंग और डाकखर्च ॥।=)

सुनहरी—१—श्रीसीतारामकी झाँकी, २—श्रीश्यामा-श्यामकी झाँकी। **बहुरंगे**—१—माँका प्यार, २—श्रीरघुनाथजीकी रूपमाधुरी, ३—त्रिभुवनमोहन राम, ४—दूल्हा राम, ५—सीताकी खोजमें, ६—शबरीके अतिथि, ७—भगवान् श्रीरामचन्द्रकी अभ्यर्थना, ८—श्रीरामचतुष्टय, ९—भगवान् बालकृष्ण, १०—तुलसीपूजन, ११—भगवान् श्रीकृष्णरूपमें, १२—योद्धा श्रीकृष्ण, १३—तपस्यामें लगी हुई पार्वतीजीको भगवान् शिवके दर्शन, १४—शिव-पार्वती, १५—भगवान् हरि-हर, १६—शुक्लाम्बरधर शशिवर्ण भगवान् विष्णु, १७—देवर्षि नारदजीको गरुड़वाहन श्रीहरिके दर्शन, १८—भगवान् शक्तिरूपमें।

उपर्युक्त १०×७॥ साइजके—एक चित्रावलीका पैकिंग और डाकखर्चसहित मूल्य २≈), दो चित्रावलियोंका पैकिंग और डाकखर्चसहित ३॥=) एवं तीन चित्रावलियोंका पैकिंग और डाकखर्चसहित ५=)।

विशेष सूचना—१५×२० साइजकी तीनों चित्रावलियाँ तथा १०×७॥ की तीनों—कुल छः प्रतियाँ एक साथ लेनेपर उनके दाम १२≈), बाद कमीशन ।॥), बाकी ११।≈), पैकिंग-डाकखर्च २॥≈), कुल १४।=) भेजने चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस (चित्रावली-विक्रय-विभाग), पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

रजि० सं० ए० १७५

'कल्याण' का आगामी विशेषाङ्क

'संक्षिप्त-देवीभागवताङ्क'

(१) बहुत दिनोंसे 'कल्याण'के बहुसंख्यक पाठकोंकी माँग थी—'श्रीमद्देवीभागवताङ्क' प्रकाशित करनेके लिये। परंतु अबतक यह सुअवसर नहीं आ सका था। इस बार जगज्जननी परमा शक्ति भगवतीकी कृपासे यह सुअवसर प्राप्त हुआ है। श्रीदेवीभागवतमें बड़ी ही सुन्दर, रोचक, उपदेशप्रद, भोग-मोक्षके साधन तथा इतिहास बतलानेवाली महत्त्वपूर्ण कथाएँ हैं। है तो यह भगवती देवीकी महिमा बतलानेवाला ग्रन्थ; पर इसमें भगवान् शिवकी महिमा, भगवान् विष्णुकी महिमा, भगवान् श्रीरामका पावन चरित्र और श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाके परम तत्त्वके साथ उनके विशद चरित्र, विभिन्न प्रकारके अर्चन, अनुष्ठानकी विधियाँ आदि विभिन्न विषयोंका परम उपयोगी विशद वर्णन है। अतः यह अङ्क बड़ा ही उपादेय, सर्वोपकारक, रोचक, आकर्षक, शिक्षाप्रद, लाभ और हित प्रदान करनेवाला, भुक्ति-मुक्तिका सहज मार्ग बतानेवाला होगा। इसमें लगभग ७०० पृष्ठ होंगे और श्रीदेवीके विविध चरित्रोंके, भगवान् विष्णु, शङ्कर, राम तथा श्रीराधा-कृष्णके अनेकों सुन्दर रंगीन तथा सादे चित्र तथा बहुसंख्यक रेखा-चित्र रहेंगे।

(२) कागजोंका मूल्य तथा सभी प्रकारका व्यय अत्यन्त बढ़ जानेपर भी इसका मूल्य वही ७॥) ही रखा गया है। अतएव पुराने ग्राहकोंको तुरंत मनीआर्डरद्वारा ७॥) (साढ़े सात रुपये) भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिये। नये ग्राहकोंको भी शीघ्र रुपये भेजकर अपना नाम लिखवा लेना चाहिये। पुराण-ग्रन्थोंकी यों ही बहुत माँग है, फिर, यह ग्रन्थ तो केवल देवी-उपासकोंके ही नहीं, शैव-वैष्णव सभीके कामका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः शीघ्र ही समाप्त हो जानेकी सम्भावना है।

(३) रुपये भेजनेके समय मनीआर्डरके कूपनमें पुराने ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिख दें और नाम-पता, ग्राम या मुहल्लेका नाम, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि बड़े-बड़े साफ अक्षरोंमें लिखें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें। रुपये मनीआर्डरद्वारा भेजने-भिजवानेमें जल्दी करनी चाहिये। केवल विशेषाङ्कका मूल्य भी ७॥) है, अतएव पूरे वर्षके लिये ग्राहक बननेमें ही सुविधा है।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें, जिससे 'कल्याण-कार्यालय'को वी० पी० के डाकखर्चकी हानि न सहनी पड़े।

(५) गीताप्रेसका पुस्तक-विभाग, 'महाभारत' विभाग, 'कल्याणकल्पतरु' विभाग, 'कल्याण'से अलग है। अतः पुस्तकोंके, महाभारतके तथा कल्पतरुके लिये उन-उनके मैनेजरके नामसे आर्डर या रुपये अलग-अलग भेजें।

(६) जिन सज्जनोंको सजिल्द अङ्क लेना हो, वे १।) (सवा रुपया) अधिक यानी ८।॥) भेजें।

(७) इस अङ्कमें लेख प्रायः नहीं जायँगे, इसलिये कोई महानुभाव लेख या कविता इसके लिये कृपया न भेजें।

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)